Garun-Puran-Saroddhar-Sanskrit

श्रीहरिः ॥

गरुडपुराण-सारोद्धार

पहला अध्याय

भगवान् विष्णु तथा गरुडके संवादमें गरुडपुराण-सारोद्धारका उपक्रम, पापी मनुष्योंकी इस लोक तथा परलोकमें होनेवाली दुर्गतिका वर्णन, दशगात्रके पिण्डदानसे यातनादेहका निर्माण

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः। क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति॥ १॥
नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः। सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत॥ २॥

धर्म ही जिसका सुदृढ़ मूल है, वेद जिसका स्कन्ध (तना) है, पुराणरूपी शाखाओंसे जो समृद्ध है, यज्ञ जिसका पुष्प है और मोक्ष जिसका फल है, ऐसे भगवान् मधुसूदनरूपी पादप*-कल्पवृक्षकी जय हो॥ १॥ देव-क्षेत्र नैमिषारण्यमें स्वर्गलोककी प्राप्तिकी कामनासे शौनकादि ऋषियोंने (एक बार) सहस्रवर्षमें पूर्ण होनेवाला यज्ञ प्रारम्भ किया॥ २॥

---

* जैसे वृक्ष सबको आश्रय देता है, वैसे ही भगवान् भी अपने चरणारविन्दोंमें आश्रय देकर सबकी रक्षा करते हैं, इसीलिये भगवान् मधुसूदनको यहाँ पादप (पद्भ्यां चरणाभ्यां पाति रक्षतीति पादपः)—वृक्षकी उपमा दी गयी है।



महामुनि सूतजी एवं ऋषिगण



भगवान् श्रीविष्णु एवं पक्षिराज गरुड

[विवरण पृ० ४ पर]

एकदा मुनयः सर्वे प्रातर्हुतहुताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्॥ ३॥

एक समय प्रातःकालके हवनादि कृत्योंका सम्पादन करके उन सभी मुनियोंने सत्कार किये गये आसनासीन सूतजी महाराजसे आदरपूर्वक यह पूछा— ॥ ३॥

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सम्यग्देवमार्गः सुखप्रदः। इदानीं श्रोतुमिच्छामो यममार्गं भयप्रदम्॥ ४॥
तथा संसारदुःखानि तत्क्लेशक्षयसाधनम् । ऐहिकामुष्मिकान् क्लेशान् यथावद्वक्तुमर्हसि॥ ५॥

ऋषियोंने कहा—(हे सूतजी महाराज!) आपने सुख देनेवाले देवमार्गका सम्यक् निरूपण किया है। इस समय हम लोग भयावह यममार्गके विषयमें सुनना चाहते हैं। आप सांसारिक दुःखोंको और उस क्लेशके विनाशक साधनको तथा इस लोक और परलोकके क्लेशोंको यथावत् वर्णन करनेमें समर्थ हैं [अतः उसका वर्णन कीजिये]॥ ४-५॥

सूत उवाच

शृणुध्वं भो विवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् । सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां दुःखदायकम्॥ ६॥
यथा श्रीविष्णुना प्रोक्तं वैनतेयाय पृच्छते। तथैव कथयिष्यामि संदेहच्छेदनाय वः॥ ७॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप लोग सुनें। मैं अत्यन्त दुर्गम यममार्गके विषयमें कहता हूँ, जो पुण्यात्माजनोंके लिये सुखद और पापियोंके लिये दुःखद है। गरुडजीके पूछनेपर भगवान् विष्णुने (उनसे) जैसा कुछ कहा था, मैं उसी प्रकार आप लोगोंके संदेहकी निवृत्तिके लिये कहूँगा॥ ६-७॥

कदाचित् सुखमासीनं वैकुण्ठं श्रीहरिं गुरुम्। विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ विनतासुतः॥ ८॥

किसी समय वैकुण्ठमें सुखपूर्वक विराजमान परम गुरु श्रीहरिसे विनतापुत्र गरुडजीने विनयसे झुककर पूछा—॥ ८॥

गरुड उवाच

भक्तिमार्गो बहुविधः कथितो भवता मम। तथा च कथिता देव भक्तानां गतिरुत्तमा॥ ९॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भयंकरम्। त्वद्भक्तिविमुखानां च तत्रैव गमनं श्रुतम्॥ १०॥
सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी। तथापि नरकं यान्ति धिग् धिगस्तु नराधमान्॥ ११॥
अतो मे भगवन् ब्रूहि पापिनां या गतिर्भवेत्। यममार्गस्य दुःखानि यथा ते प्राप्नुवन्ति हि॥ १२॥

गरुडजीने कहा—हे देव! आपने भक्तिमार्गका अनेक प्रकारसे मेरे समक्ष वर्णन किया है और भक्तोंको प्राप्त होनेवाली उत्तम गतिके विषयमें भी कहा है। अब हम भयंकर यममार्गके विषयमें सुनना चाहते हैं। हमने सुना है कि आपकी भक्तिसे विमुख प्राणी वहीं (नरकमें) जाते हैं॥ ९-१०॥ भगवान्‌का नाम सुगमतापूर्वक लिया जा सकता है, जिह्वा प्राणीके अपने वशमें है तो भी लोग नरकको जाते हैं, ऐसे अधम मनुष्योंको बार-बार धिक्कार है। इसलिये हे भगवन्! पापियोंको जो गति प्राप्त होती है तथा यममार्गमें जैसे वे अनेक प्रकारके दुःख प्राप्त करते हैं, उसे आप मुझसे कहें॥ ११-१२॥

श्रीभगवानुवाच

वक्ष्येऽहं शृणु पक्षीन्द्र यममार्गं च येन ये। नरके पापिनो यान्ति शृण्वतामपि भीतिदम्॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे पक्षीन्द्र! सुनो, मैं उस यममार्गके विषयमें कहता हूँ, जिस मार्गसे पापीजन नरककी यात्रा करते हैं और जो सुननेवालोंके लिये भी भयावह है॥ १३॥

ये हि पापरतास्तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः। दुष्टसङ्गाश्च सच्छास्त्रसत्संगतिपराङ्मुखाः॥ १४॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः। आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः॥ १५॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः। प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥ १६॥

ये नरा ज्ञानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम्। पापशीला नरा यान्ति दुःखेन यमयातनाम्॥ १७॥

पापिनामैहिकं दुःखं यथा भवति तच्छृणु। ततस्ते मरणं प्राप्य यथा गच्छन्ति यातनाम्॥ १८॥

हे तार्क्ष्य! जो प्राणी सदा पापपरायण हैं, दया और धर्मसे रहित हैं, जो दुष्ट लोगोंकी संगतिमें रहते हैं, सत्-शास्त्र और सत्संगतिसे विमुख हैं; जो अपनेको स्वयंप्रतिष्ठित मानते हैं, अहंकारी हैं तथा धन और मानके मदसे चूर हैं, आसुरी शक्तिको प्राप्त हैं तथा दैवी सम्पत्तिसे रहित हैं; जिनका चित्त अनेक विषयोंमें आसक्त होनेसे भ्रान्त है, जो मोहके जालमें फँसे हैं और कामनाओंके भोगमें ही लगे हैं, ऐसे व्यक्ति अपवित्र नरकमें गिरते हैं। जो लोग ज्ञानशील हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। पापी मनुष्य दुःखपूर्वक यम-यातना प्राप्त करते हैं॥ १४—१७॥

पापियोंको इस लोकमें जैसे दुःखकी प्राप्ति होती है और मृत्युके पश्चात् वे जैसी यमयातनाको प्राप्त होते हैं, उसे सुनो॥ १८॥

सुकृतं दुष्कृतं वाऽपि भुक्त्वा पूर्वं यथार्जितम्। कर्मयोगात् तदा तस्य कश्चिद् व्याधिः प्रजायते॥ १९॥
आधिव्याधिसमायुक्तं जीविताशासमुत्सुकम्। कालो बलीयानहिवदज्ञातः प्रतिपद्यते॥ २०॥
तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयम्भृतैः। जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे॥ २१॥
आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन्। आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः॥ २२॥
वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः। कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते॥ २३॥

यथोपार्जित पुण्य और पापके फलोंको पूर्वमें भोगकर कर्मके सम्बन्धसे उसे कोई शारीरिक रोग हो जाता है॥ १९॥ आधि (मानसिक रोग) और व्याधि (शारीरिक रोग)-से युक्त तथा जीवनधारण करनेकी आशासे उत्कण्ठित उस व्यक्तिकी जानकारीके बिना ही सर्पकी भाँति बलवान् काल उसके समीप आ पहुँचता है॥ २०॥ उस मृत्युकी सम्प्राप्तिकी स्थितिमें भी उसे वैराग्य नहीं होता। उसने जिनका भरण-पोषण किया था, उन्हींके द्वारा उसका भरण-पोषण होता है, वृद्धावस्थाके कारण विकृत रूपवाला और मरणाभिमुख वह व्यक्ति घरमें अवमाननापूर्वक दी हुई वस्तुको कुत्तेकी भाँति खाता हुआ जीवन व्यतीत करता है। वह रोगी हो जाता है, उसे मन्दाग्नि हो जाती है और उसका आहार तथा उसकी सभी चेष्टाएँ कम हो जाती हैं॥ २१-२२॥ प्राणवायुके बाहर निकलते समय आँखें उलट जाती हैं, नाडियाँ कफसे रुक जाती हैं, उसे खाँसी और श्वास लेनेमें प्रयत्न करना पड़ता है तथा कण्ठसे घुर्-घुर्-से शब्द निकलने लगते हैं॥ २३॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः। वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशंगतः॥ २४॥
एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्माऽजितेन्द्रियः। म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः॥ २५॥
तस्मिन्नन्तक्षणे तार्क्ष्य दैवी दृष्टिः प्रजायते। एकीभूतं जगत्सर्वं न किंचिद्वक्तुमीहते॥ २६॥
विकलेन्द्रियसंघाते चैतन्ये जडतां गते। प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर्निकटवर्तिभिः॥ २७॥
स्वस्थानाच्चलिते श्वासे कल्पाख्यो ह्यातुरक्षणः। शतवृश्चिकदंष्ट्रस्य या पीडा साऽनुभूयते॥ २८॥
फेनमुद्गिरते सोऽथ मुखं लालाकुलं भवेत्। अधोद्वारेण गच्छन्ति पापिनां प्राणवायवः॥ २९॥

चिन्तामग्र स्वजनोंसे घिरा हुआ तथा सोया हुआ वह (व्यक्ति) कालपाशके वशीभूत होनेके कारण बुलानेपर भी नहीं बोलता॥ २४॥ इस प्रकार कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही निरन्तर लगा रहनेवाला, अजितेन्द्रिय व्यक्ति (अन्तमें) रोते-बिलखते बन्धु-बान्धवोंके बीच उत्कट वेदनासे संज्ञाशून्य होकर मर जाता है॥ २५॥ हे गरुड! उस अन्तिम क्षणमें प्राणीको व्यापक (दिव्य) दृष्टि प्राप्त हो जाती है, जिससे वह लोक-परलोकको एकत्र देखने लगता है। अतः चकित होकर वह कुछ भी कहना नहीं चाहता॥ २६॥ यमदूतोंके समीप आनेपर सभी इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं, चेतना जडीभूत हो जाती है और प्राण चलायमान हो जाते हैं॥ २७॥ आतुरकालमें प्राणवायुके अपने स्थानसे चल देनेपर एक क्षण भी एक कल्पके समान प्रतीत होता है और सौ बिच्छुओंके डंक मारनेसे जैसी पीडा होती है, वैसी पीडाका उस समय (उसे) अनुभव होने लगता है॥ २८॥ वह मरणासन्न व्यक्ति फेन उगलने लगता है और उसका मुख लारसे भर जाता है। पापीजनोंके प्राणवायु अधोद्वार (गुदामार्ग)-से निकलते हैं॥ २९॥

यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ। पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायितौ॥ ३०॥
ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ। स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः सकृन्मूत्रं विमुञ्चति॥ ३१॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन् कलेवरात्। तदैव गृह्यते दूतैर्याम्यैः पश्यन् स्वकं गृहम्॥ ३२॥
यातनादेहमावृत्य पाशैर्बद्ध्वा गले बलात्। नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा॥ ३३॥
तस्यैवं नीयमानस्य दूताः संतर्जयन्ति च। प्रवदन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः॥ ३४॥

उस समय दोनों हाथोंमें पाश और दण्ड धारण किये, नग्न, दाँतोंको कटकटाते हुए क्रोधपूर्ण नेत्रवाले यमके दो भयंकर दूत समीपमें आते हैं॥ ३०॥ उनके केश ऊपरकी ओर उठे होते हैं, वे कौएके समान काले होते हैं और टेढ़े मुखवाले होते हैं तथा उनके नख आयुधकी भाँति होते हैं। उन्हें देखकर भयभीत हृदयवाला वह मरणासन्न प्राणी मल-मूत्रका विसर्जन करने लगता है॥ ३१॥ अपने पाञ्चभौतिक शरीरसे हाय-हाय करते हुए निकलता हुआ तथा यमदूतोंके द्वारा पकड़ा हुआ वह अङ्गुष्ठमात्र प्रमाणका पुरुष अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा यातनादेहसे ढक करके गलेमें बलपूर्वक पाशोंसे बाँधकर सुदूर यममार्गपर यातनाके लिये उसी प्रकार ले जाया जाता है, जिस प्रकार राजपुरुष दण्डनीय अपराधीको ले जाते हैं॥ ३२-३३॥ इस प्रकार ले जाये जाते हुए उस जीवको यमके दूत तर्जना करके डराते हैं और नरकोंके तीव्र भयका पुनः-पुनः वर्णन करते हैं (सुनाते हैं)— ॥ ३४॥

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् यास्यसि त्वं यमालयम्। कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां नयावोऽद्य मा चिरम्॥ ३५॥



भयंकर यमदूत



यममार्गकी यातना

[विवरण पृ० २० पर]

[यमदूत कहते हैं—] रे दुष्ट! शीघ्र चल, तुम यमलोक जाओगे। आज तुम्हें हम सब कुम्भीपाक आदि नरकोंमें शीघ्र ही ले जायँगे॥ ३५॥

एवं वाचस्तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा। उच्चैर्हाहेति विलपंस्ताड्यते यमकिङ्करैः॥ ३६॥
तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः। पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन्॥ ३७॥
क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबालुके।
कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके॥ ३८॥
तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्च्छितः पुनरुत्थितः। यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम्॥ ३९॥

इस प्रकार यमदूतोंकी वाणी तथा बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनता हुआ वह जीव जोरसे हाहाकार करके विलाप करता है और यमदूतोंके द्वारा प्रताडित किया जाता है॥ ३६॥ यमदूतोंकी तर्जनाओंसे उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है, वह काँपने लगता है, रास्तेमें उसे कुत्ते काटते हैं और अपने पापोंका स्मरण करता हुआ वह पीडित जीव (यममार्गमें) चलता है॥ ३७॥ भूख और प्याससे पीडित होकर सूर्य, दावाग्नि एवं वायु (-के झोंकों)-से संतप्त होते हुए और यमदूतोंके द्वारा पीठपर कोड़ेसे पीटे जाते हुए उस जीवको तपी हुई बालुकासे पूर्ण तथा विश्रामरहित और जलरहित मार्गपर असमर्थ होते हुए भी बड़ी कठिनाईसे चलना पड़ता है॥ ३८॥ थककर जगह-जगह गिरता और मूर्च्छित होता हुआ वह पुनः उठकर पापीजनोंकी भाँति अन्धकारपूर्ण यमलोकमें ले जाया जाता है॥ ३९॥

त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीयते तत्र मानवः। प्रदर्शयन्ति दूतास्ताः घोरा नरकयातनाः॥ ४०॥
मुहूर्तमात्रात् त्वरितं यमं वीक्ष्य भयं पुमान्। यमाज्ञया समं दूतैः पुनरायाति खेचरः॥ ४१॥
आगम्य वासनाबद्धो देहमिच्छन् यमानुगैः। धृतः पाशेन रुदति क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः॥ ४२॥

दो अथवा तीन मुहूर्तमें वह मनुष्य वहाँ पहुँचाया जाता है और यमदूत उसे घोर नरकयातनाओंको दिखाते हैं॥ ४०॥ मुहूर्तमात्रमें यमको और नारकीय यातनाओंके भयको देखकर वह व्यक्ति यमकी आज्ञासे आकाशमार्गसे यमदूतोंके साथ पुनः इस लोक (मनुष्यलोक)-में चला आता है॥ ४१॥ मनुष्यलोकमें आकर अनादि वासनासे बद्ध वह जीव देहमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा रखता है, किंतु यमदूतोंद्वारा पकड़कर पाशमें बाँध दिये जानेसे भूख और प्यासससे अत्यन्त पीडित होकर रोता है॥ ४२॥

भुङ्क्ते पिण्डं सुतैर्दत्तं दानं चातुरकालिकम्। तथापि नास्तिकस्तार्क्ष्य तृप्तिं याति न पातकी॥ ४३॥
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दानं श्राद्धं जलाञ्जलिः। अतः क्षुद्व्याकुला यान्ति पिण्डदानभुजोऽपि ते॥ ४४॥
भवन्ति प्रेतरूपास्ते पिण्डदानविवर्जिताः। आकल्पं निर्जनारण्ये भ्रमन्ति बहुदुःखिताः॥ ४५॥

हे तार्क्ष्य! वह पातकी प्राणी पुत्रोंसे दिये हुए पिण्ड तथा आतुरकालमें दिये हुए दानको प्राप्त करता है तो भी उस नास्तिकको तृप्ति नहीं होती॥ ४३॥ पुत्रादिके द्वारा पापियोंके उद्देश्यसे किये गये श्राद्ध, दान तथा जलाञ्जलि उनके पास ठहरती नहीं। अतः पिण्डदानका भोग करनेपर भी वे क्षुधासे व्याकुल होकर (यममार्गमें) जाते हैं॥ ४४॥ जिनका

पिण्डदान नहीं होता, वे प्रेतरूपमें होकर कल्पपर्यन्त निर्जन वनमें बहुत दुःखी होकर भ्रमण करते रहते हैं ॥ ४५ ॥

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अभुक्त्वा यातनां जन्तुर्मानुष्यं लभते न हि ॥ ४६ ॥
अतो दद्यात् सुतः पिण्डान् दिनेषु दशसु द्विज। प्रत्यहं ते विभाज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम ॥ ४७ ॥
भागद्वयं तु देहस्य पुष्टिदं भूतपञ्चके। तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं सोपजीवति ॥ ४८ ॥
अहोरात्रैश्च नवभिः प्रेतः पिण्डमवाप्नुयात्। जन्तुर्निष्पन्नदेहश्च दशमे बलमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥
दग्धे देहे पुनर्देहः पिण्डैरुत्पद्यते खग। हस्तमात्रः पुमान् येन पथि भुंक्ते शुभाशुभम् ॥ ५० ॥

सैकड़ों करोड़ कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग किये कर्मफलका नाश नहीं होता और जबतक वह पापी जीव यातनाओंका भोग नहीं कर लेता, तबतक उसे मनुष्य-शरीर भी प्राप्त नहीं होता ॥ ४६ ॥ हे पक्षी! इसलिये पुत्रको चाहिये कि वह दस दिनोंतक प्रतिदिन पिण्डदान करे। हे पक्षिश्रेष्ठ! वे पिण्ड प्रतिदिन चार भागोंमें विभक्त होते हैं। उनमें दो भाग तो प्रेतके देहके पञ्चभूतोंकी पुष्टिके लिये होते हैं, तीसरा भाग यमदूतोंको प्राप्त होता है और चौथे भागसे उस जीवको आहार प्राप्त होता है ॥ ४७-४८ ॥ नौ रात-दिनोंमें पिण्डको प्राप्त करके प्रेतका शरीर बन जाता है और दसवें दिन उसमें बलकी प्राप्ति होती है ॥ ४९ ॥ हे खग! मृत व्यक्तिके देहके जल जानेपर पिण्डके द्वारा पुनः एक हाथ लम्बा शरीर प्राप्त होता है, जिसके द्वारा वह प्राणी (यमलोकके) रास्तेमें शुभ और अशुभ कर्मोंके फलको भोगता है ॥ ५० ॥

प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते। ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन तृतीयाद्धृदयं भवेत्॥ ५१॥
चतुर्थेन भवेत् पृष्ठं पञ्चमान्नाभिरेव च। षष्ठे च सप्तमे चैव कटी गुह्यं प्रजायते॥ ५२॥
ऊरुश्चाष्टमे चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा। नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि क्षुधा तृषा॥ ५३॥
पिण्डजं देहमाश्रित्य क्षुधाविष्टस्तृषार्दितः। एकादशं द्वादशं च प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्॥ ५४॥
त्रयोदशेऽहनि प्रेतो यन्त्रितो यमकिङ्करैः। तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः॥ ५५॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यममार्गस्य विस्तारो विना वैतरणीं खग॥ ५६॥

पहले दिन जो पिण्ड दिया जाता है, उससे उसका सिर बनता है, दूसरे दिनके पिण्डसे ग्रीवा (गरदन) और स्कन्ध (कंधे) तथा तीसरे पिण्डसे हृदय बनता है॥ ५१॥ चौथे पिण्डसे पृष्ठभाग (पीठ), पाँचवेंसे नाभि, छठे तथा सातवें पिण्डसे क्रमशः कटि (कमर) और गुह्याङ्ग उत्पन्न होते हैं॥ ५२॥ आठवें पिण्डसे ऊरु (जाँघें) और नौवें पिण्डसे जानु (घुटने) तथा पैर बनते हैं। इस प्रकार नौ पिण्डोंसे देहको प्राप्त करके दसवें पिण्डसे उसको क्षुधा और तृषा (भूख-प्यास)—ये दोनों जाग्रत् होती हैं॥ ५३॥ इस पिण्डज शरीरको प्राप्त करके भूख और प्याससे पीडित जीव ग्यारहवें तथा बारहवें—दो दिन भोजन करता है॥ ५४॥ तेरहवें दिन यमदूतोंके द्वारा बन्दरकी तरह बँधा हुआ वह प्राणी अकेला उस यममार्गमें जाता है॥ ५५॥ हे खग! (मार्गमें मिलनेवाली) वैतरणीको छोड़कर यमलोकके मार्गकी दूरीका प्रमाण छियासी हजार योजन है॥ ५६॥

अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम्। चत्वारिंशत् तथा सप्त दिवारात्रेण गच्छति॥ ५७॥
अतीत्य क्रमशो मार्गे पुराणीमानि षोडश। प्रयाति धर्मराजस्य भवनं पातकी जनः॥ ५८॥
सौम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं शीताढ्यं बहुभीति धर्मभवनं याम्यं पुरं चाग्रतः॥ ५९॥
याम्यपाशैर्धृतः पापी हाहेति प्ररुदन् पथि। स्वगृहं तु परित्यज्य पुरं याम्यमनुव्रजेत्॥ ६०॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे पापिनामैहिकामुष्मिकदुःखनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥



वह प्रेत प्रतिदिन रात-दिनमें दो सौ सैंतालीस योजन चलता है॥ ५७॥ मार्गमें आये हुए इन सोलह पुरों (नगरों)-को पार करके पातकी व्यक्ति धर्मराजके भवनमें जाता है। (१) सौम्यपुर, (२) सौरिपुर, (३) नगेन्द्रभवन, (४) गन्धर्वपुर, (५) शैलागम, (६) क्रौञ्चपुर, (७) क्रूरपुर, (८) विचित्रभवन, (९) बह्वापदपुर, (१०) दुःखदपुर, (११) नानाक्रन्दपुर, (१२) सुतप्तभवन, (१३) रौद्रपुर, (१४) पयोवर्षणपुर, (१५) शीताढ्यपुर तथा (१६) बहुभीतिपुरको पार करके इनके आगे यमपुरीमें धर्मराजका भवन स्थित है॥ ५८-५९॥ यमराजके दूतोंके पाशोंसे बँधा हुआ पापी जीव रास्तेभर हाहाकार करता—रोता हुआ अपने घरको छोड़ करके यमपुरीको जाता है॥ ६०॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'पापियोंके इस लोक तथा परलोकके दुःखका निरूपण' नामका पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥



दूसरा अध्याय

यममार्गकी यातनाओंका वर्णन, वैतरणी नदीका स्वरूप, यममार्गके सोलह पुरोंमें क्रमशः गमन तथा वहाँ पुत्रादिकोंद्वारा दिये गये पिण्डदानको ग्रहण करना

गरुड उवाच

कीदृशो यमलोकस्य पन्था भवति दुःखदः। तत्र यान्ति यथा पापास्तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! यमलोकका मार्ग किस प्रकार दुःखदायी होता है। पापीलोग वहाँ जिस प्रकार जाते हैं, वह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

यममार्गं महद्दुःखप्रदं ते कथयाम्यहम्। मम भक्तोऽपि तच्छ्रुत्वा त्वं भविष्यसि कम्पितः॥ २ ॥
वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः। यस्मिन् मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् समुद्धरेत्॥ ३ ॥
न जलं दृश्यते क्वापि तृषितोऽतीव यः पिबेत्। तप्यन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा खग॥ ४ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे गरुड! महान् दुःख प्रदान करनेवाले यममार्गके विषयमें मैं तुमसे कहता हूँ, मेरा भक्त होनेपर भी तुम उसे सुनकर काँप उठोगे॥ २॥ यममार्गमें वृक्षकी छाया नहीं है, जहाँ प्राणी विश्राम कर सके। उस यममार्गमें अन्न आदि भी नहीं हैं, जिनसे कि वह अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके॥ ३॥ वहाँ कहीं जल भी नहीं

दीखता, जिसे अत्यन्त तृषातुर वह (जीव) पी सके। वहाँ प्रलयकालकी भाँति बारहों सूर्य तपते रहते हैं॥ ४॥

तस्मिन् गच्छति पापात्मा शीतवातेन पीडितः। कण्टकैर्विध्यते क्वापि क्वचित्सर्पैर्महाविषैः॥ ५ ॥
सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिर्घोरैर्भक्ष्यते क्वापि पापकृत्। वृश्चिकैर्दंश्यते क्वापि क्वचिद्दह्यति वह्निना॥ ६ ॥
ततः क्वचिन्महाघोरमसिपत्रवनं महत्। योजनानां सहस्रे द्वे विस्तारायामतः स्मृतम्॥ ७ ॥

उस मार्गमें जाता हुआ पापी कभी बर्फीली हवासे पीडित होता है तथा कभी काँटे चुभते हैं और कभी महाविषधर सर्पोंके द्वारा डँसा जाता है॥ ५॥ (वह) पापी कहीं सिंहों, व्याघ्रों और भयंकर कुत्तोंद्वारा खाया जाता है, कहीं बिच्छुओंद्वारा डँसा जाता है और कहीं उसे आगसे जलाया जाता है॥ ६॥ तब कहीं अति भयंकर महान् असिपत्रवन नामक नरकमें वह पहुँचता है, जो दो हजार योजन विस्तारवाला कहा गया है॥ ७॥

काकोलूकवटगृध्रसरघादंशसंकुलम्। सदावाग्नि च तत्पत्रैश्छिन्नभिन्नः प्रजायते॥ ८ ॥
क्वचित् पतत्यन्धकूपे विकटात् पर्वतात् क्वचित्। गच्छते क्षुरधारासु शंकूनामुपरि क्वचित्॥ ९ ॥
स्खलत्यन्धे तमस्युग्रे जले निपतति क्वचित्। क्वचित् पङ्कजलौकाढ्ये क्वचित् संतप्तकर्दमे॥ १०॥

वह वन कौओं, उल्लुओं, वटों (पक्षिविशेषों), गीधों, सरघों तथा डाँसोंसे व्याप्त है। उसमें चारों ओर दावाग्नि व्याप्त है, असिपत्रके पत्तोंसे वह (जीव) उस वनमें छिन्न-भिन्न हो जाता है॥ ८॥ कहीं अंधे कुँएमें गिरता है, कहीं विकट पर्वतसे गिरता है, कहीं छूरेकी धारपर चलता है तो कहीं कीलोंके ऊपर चलता है॥ ९॥

कहीं घने अन्धकारमें गिरता है, कहीं उग्र (भय उत्पन्न करनेवाले) जलमें गिरता है, कहीं जोंकोंसे भरे हुए कीचड़में गिरता है तो कहीं जलते हुए कीचड़में गिरता है॥ १०॥

संतप्तवालुकाकीर्णे ध्माततताम्रमये क्वचित्। क्वचिदङ्गारराशौ च महाधूमाकुले क्वचित्॥ ११॥
क्वचिदङ्गारवृष्टिश्च शिलावृष्टिः सवज्रका। रक्तवृष्टिः शस्त्रवृष्टिः क्वचिदुष्णाम्बुवर्षणम्॥ १२॥
क्षारकर्दमवृष्टिश्च महानिम्नानि च क्वचित्। वप्रप्ररोहणं क्वापि कन्दरेषु प्रवेशनम्॥ १३॥

कहीं तपी हुई बालुकासे व्याप्त और कहीं धधकते हुए ताम्रमय मार्ग, कहीं अंगारकी राशि और कहीं अत्यधिक धुएँसे भरे हुए मार्गपर उसे चलना पड़ता है॥ ११॥ कहीं अंगारकी वृष्टि होती है, कहीं बिजली गिरनेके साथ शिलावृष्टि होती है, कहीं रक्तकी, कहीं शस्त्रकी और कहीं गर्मजलकी वृष्टि होती है॥ १२॥ कहीं खारे कीचड़की वृष्टि होती है, (मार्गमें) कहीं गहरी खाई है, कहीं पर्वत-शिखरोंकी चढ़ाई है और कहीं कन्दराओंमें प्रवेश करना पड़ता है॥ १३॥

गाढान्धकारस्तत्रास्ति दुःखारोहशिलाः क्वचित्। पूयशोणितपूर्णाश्च विष्ठापूर्णह्रदाः क्वचित्॥ १४॥
मार्गमध्ये वहत्युग्रा घोरा वैतरणी नदी। सा दृष्टा दुःखदा किं वा यस्या वार्ता भयावहा॥ १५॥
शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितवाहिनी। अस्थिवृन्दतटा दुर्गा मांसशोणितकर्दमा॥ १६॥

वहाँ (मार्गमें) कहीं घना अंधकार है तो कहीं दुःखसे चढ़ी जानेयोग्य शिलाएँ हैं, कहीं मवाद, रक्त तथा

विष्ठासे भरे हुए तालाब हैं॥ १४॥ (यम) मार्गके बीचोबीच अत्यन्त उग्र और घोर वैतरणी नदी बहती है। वह देखनेपर दुःखदायिनी हो तो क्या आश्चर्य? उसकी वार्ता ही भय पैदा करनेवाली है॥ १५॥ वह सौ योजन चौड़ी है, उसमें पूय (पीब-मवाद) और शोणित (रक्त) बहते रहते हैं। हड्डियोंके समूहसे तट बने हैं अर्थात् उसके तटपर हड्डियोंका ढेर लगा रहता है। मांस और रक्तके कीचड़वाली वह (नदी) दुःखसे पार की जानेवाली है॥ १६॥

अगाधा दुस्तरा पापैः केशशैवालदुर्गमा। महाग्राहसमाकीर्णा घोरपक्षिशतैर्वृता॥ १७॥
आगतं पापिनं दृष्ट्वा ज्वालाधूमसमाकुला। क्वथ्यते सा नदी तार्क्ष्य कटाहान्तर्घृतं यथा॥ १८॥
कृमिभिः संकुला घोरैः सूचीवक्त्रैः समन्ततः। वज्रतुण्डैर्महागृध्रैर्वायसैः परिवारिता॥ १९॥
शिशुमारैश्च मकरैर्जलौकामत्स्यकच्छपैः। अन्यैर्जलस्थैर्जीवैश्च पूरिता मांसभेदकैः॥ २०॥
पतितास्तत्प्रवाहे च क्रन्दन्ति बहुपापिनः। हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः॥ २१॥
क्षुधितास्तृषिताः पापाः पिबन्ति किल शोणितम्। सा सरिद्रुधिरापूरं वहन्ती फेनिलं बहु॥ २२॥
महाघोरातिगर्जन्ती दुर्निरीक्ष्या भयावहा। तस्या दर्शनमात्रेण पापाः स्युर्गतचेतनाः॥ २३॥

अथाह गहरी और पापियोंके द्वारा दुःखपूर्वक पार की जानेवाली वह नदी केशरूपी सेवारसे भरी होनेके कारण दुर्गम है। वह विशालकाय ग्राहों (घड़ियालों)-से व्याप्त है और सैकड़ों प्रकारके घोर पक्षियोंसे आवृत है॥ १७॥ हे गरुड! आये हुए पापीको देखकर वह नदी ज्वाला और धूमसे भरकर कड़ाहमें रखे घृतकी भाँति खौलने लगती

है॥ १८॥ वह नदी सूईके समान मुखवाले भयानक कीड़ोंसे चारों ओर व्याप्त है। वज्रके समान चोंचवाले बड़े-बड़े गीध एवं कौओंसे घिरी हुई है॥ १९॥ वह नदी शिशुमार, मगर, जोंक, मछली, कछुए तथा अन्य मांसभक्षी जलचर-जीवोंसे भरी पड़ी है॥ २०॥ उसके प्रवाहमें गिरे हुए बहुत-से पापी रोते-चिल्लाते हैं और हे भाई, हा पुत्र!, हा तात!—इस प्रकार कहते हुए बार-बार विलाप करते हैं॥ २१॥ भूख और प्याससे व्याकुल होकर पापी जीव रक्तका पान करते हैं। वह नदी झागपूर्ण रक्तके प्रवाहसे व्याप्त, महाघोर, अत्यन्त गर्जना करनेवाली, देखनेमें दुःख पैदा करनेवाली तथा भयावह है। उसके दर्शनमात्रसे पापी चेतनाशून्य हो जाते हैं॥ २२-२३॥

बहुवृश्चिकसंकीर्णा सेविता कृष्णपन्नगैः। तन्मध्ये पतितानां च त्राता कोऽपि न विद्यते॥ २४॥
आवर्तशतसाहस्त्रैः पाताले यान्ति पापिनः। क्षणं तिष्ठन्ति पाताले क्षणादुपरिवर्तिनः॥ २५॥
पापिनां पतनायैव निर्मिता सा नदी खग। न पारं दृश्यते तस्या दुस्तरा बहुदुःखदा॥ २६॥

बहुत-से बिच्छू तथा काले सर्पोंसे व्याप्त उस नदीके बीचमें गिरे हुए पापियोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है॥ २४॥ उसके सैकड़ों, हजारों, भँवरोंमें पड़कर पापी पातालमें चले जाते हैं। क्षणभर पातालमें रहते हैं और एक क्षणमें ही ऊपर चले आते हैं॥ २५॥ हे खग! वह नदी पापियोंके गिरनेके लिये ही बनायी गयी है। उसका पार नहीं दीखता। वह अत्यन्त दुःखपूर्वक तरनेयोग्य तथा बहुत दुःख देनेवाली है॥ २६॥

एवं बहुविधक्लेशे यममार्गेऽतिदुःखदे। क्रोशन्तश्च रुदन्तश्च दुःखिता यान्ति पापिनः॥ २७॥

पाशेन यन्त्रिताः केचित् कृष्यमाणास्तथांकुशैः । शस्त्राग्रैः पृष्ठतः प्रोतैर्नीयमानाश्च पापिनः ॥ २८ ॥
नासाग्रपाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथापरे । कालपाशैः कृष्यमाणाः काकैः कृष्यास्तथापरे॥ २९ ॥

इस प्रकार बहुत प्रकारके क्लेशोंसे व्याप्त अत्यन्त दुःखप्रद यममार्गमें रोते-चिल्लाते हुए दुःखी पापी जाते हैं ॥ २७ ॥ कुछ पापी पाशसे बँधे होते हैं, कुछ अंकुशमें फँसाकर खींचे जाते हैं, और कुछ शस्त्रके अग्रभागसे पीठमें छेदते हुए ले जाये जाते हैं ॥ २८ ॥ कुछ नाकके अग्रभागमें लगे हुए पाशसे और कुछ कानमें लगे हुए पाशसे खींचे जाते हैं। कुछ कालपाशसे खींचे जाते हैं और कुछ कौओंसे खींचे जाते हैं ॥ २९ ॥

ग्रीवाबाहुषु पादेषु बद्धाः पृष्ठे च शृङ्खलैः । अयोभारचयं केचिद्वहन्तः पथि यान्ति ते ॥ ३० ॥
यमदूतैर्महाघोरैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः । वमन्तो रुधिरं वक्त्रात् तदेवाश्नन्ति ते पुनः ॥ ३१ ॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः । अतीव दुःखसम्पन्नाः प्रयान्ति यममन्दिरम् ॥ ३२ ॥

वे पापी गरदन, हाथ तथा पैरमें जंजीरसे बँधे हुए तथा अपनी पीठपर लोहेके भारको ढोते हुए मार्गपर चलते हैं ॥ ३० ॥ अत्यन्त घोर यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे पीटे जाते हुए वे मुखसे रक्त वमन करते हुए तथा वमन किये हुए रक्तको पुनः पीते (हुए जाते) हैं ॥ ३१ ॥ (उस समय) अपने दुष्कर्मोंको सोचते हुए प्राणी अत्यन्त ग्लानिका अनुभव करते हैं और अतीव दुःखित होकर यमलोकको जाते हैं ॥ ३२ ॥

तथापि स व्रजन् मार्गे पुत्र पौत्र इति ब्रुवन् । हा हेति प्ररुदन् नित्यमनुतप्यति मन्दधीः ॥ ३३ ॥

महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते। तत्प्राप्य न कृतो धर्मः कीदृशं हि मया कृतम्॥ ३४॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः।
न तीर्थसेवा विहिता विधानतो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३५॥

इस प्रकार यममार्गमें जाता हुआ वह मन्दबुद्धि प्राणी हा पुत्र! हा पौत्र! इस प्रकार पुत्र और पौत्रोंको पुकारते हुए, हाय-हाय इस प्रकार विलाप करते हुए पश्चात्तापकी ज्वालासे जलता रहता है॥ ३३॥ (वह विचार करता है कि) महान् पुण्यके सम्बन्धसे मनुष्य-जन्म प्राप्त होता है, उसे प्राप्तकर भी मैंने धर्माचरण नहीं किया, यह मैंने क्या किया॥ ३४॥ मैंने दान दिया नहीं, अग्निमें हवन किया नहीं, तपस्या की नहीं, देवताओंकी भी पूजा की नहीं, विधि-विधानसे तीर्थसेवा की नहीं, अतः हे जीव! जो तुमने किया है, उसीका फल भोगो॥ ३५॥

न पूजिता विप्रगणाः सुरापगा न चाश्रिताः सत्पुरुषा न सेविताः।
परोपकारो न कृतः कदाचन देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३६॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे।
गोविप्रवृत्त्यर्थमकारि नाण्वपि देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३७॥

(हे देही! तुमने) ब्राह्मणोंकी पूजा की नहीं, देवनदी गङ्गाका सहारा लिया नहीं, सत्पुरुषोंकी सेवा की नहीं, कभी भी दूसरेका उपकार किया नहीं, इसलिये हे जीव! जो तुमने किया है, अब उसीका फल भोगो॥ ३६॥ मनुष्यों और

पशु-पक्षियोंके लिये जलहीन प्रदेशमें जलाशयका निर्माण किया नहीं। गौओं और ब्राह्मणोंकी आजीविकाके लिये थोड़ा भी प्रयास किया नहीं, इसलिये हे देही! तुमने जो किया है, उसीसे अपना निर्वाह करो॥ ३७॥

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेदशास्त्रार्थवचः प्रमाणितम्।
श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम्॥ ३८॥

तुमने नित्य-दान किया नहीं, गौओंके दैनिक भरण-पोषणकी व्यवस्था की नहीं, वेदों और शास्त्रोंके वचनोंको प्रमाण माना नहीं, पुराणोंको सुना नहीं, विद्वानोंकी पूजा की नहीं, इसलिये हे देही! जो तुमने किया है, उन्हीं दुष्कर्मोंके फलको अब भोगो॥ ३८॥

भर्तुर्मया नैव कृतं हितं वचः पतिव्रतं नैव कदापि पालितम्।
न गौरवं क्वापि कृतं गुरूचितं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ३९॥
न धर्मबुद्ध्या पतिरेव सेवितो वह्निप्रवेशो न कृतो मृते पतौ।
वैधव्यमासाद्य तपो न सेवितं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ४०॥
मासोपवासैर्न विशोषितं मया चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः॥ ४१॥

(नारी-जीव भी पश्चात्ताप करते हुए कहता है) मैंने पतिकी हितकर आज्ञाका पालन किया नहीं, पातिव्रत्य धर्मका कभी पालन किया नहीं और गुरुजनोंको गौरवोचित सम्मान कभी दिया नहीं, इसलिये हे देहिन्! जो तुमने

किया, उसीका अब फल भोगो ॥ ३९ ॥ धर्मकी बुद्धिसे एकमात्र पतिकी सेवा की नहीं और पतिकी मृत्यु हो जानेपर वह्निप्रवेश करके उनका अनुगमन किया नहीं, वैधव्य प्राप्त करके त्यागमय जीवन व्यतीत किया नहीं, इसलिये हे देहिन्! जैसा किया, उसका फल अब भोगो ॥ ४० ॥ मासपर्यन्त किये जानेवाले उपवासोंसे तथा चान्द्रायण-व्रतों[1] आदि सुविस्तीर्ण नियमोंके पालनसे शरीरको सुखाया नहीं। पूर्वजन्ममें किये हुए दुष्कर्मोंसे बहुत प्रकारके दुःखोंको प्राप्त करनेके लिये नारी-शरीर प्राप्त किया था ॥ ४१ ॥

एवं विलप्य बहुशो संस्मरन् पूर्वदैहिकम्। मानुषत्वं मम कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति ॥ ४२ ॥
दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति। अष्टादशे दिने तार्क्ष्य प्रेतः सौम्यपुरं व्रजेत् ॥ ४३ ॥
तस्मिन् पुरवरे रम्ये प्रेतानां च गणो महान्। पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥ ४४ ॥

इस तरह बहुत प्रकारसे विलाप करके पूर्वदेहका स्मरण करते हुए 'मेरा मानव-जन्म (शरीर) कहाँ चला गया' इस प्रकार चिल्लाता हुआ वह यममार्गमें चलता है ॥ ४२ ॥ हे तार्क्ष्य! (इस प्रकार) सतरह दिनतक अकेले वायुवेगसे चलते हुए अठारहवें दिन वह प्रेत सौम्यपुरमें जाता है ॥ ४३ ॥ उस रमणीय श्रेष्ठ सौम्यपुरमें प्रेतोंका महान् गण रहता है। वहाँ पुष्पभद्रा नदी और अत्यन्त प्रिय दिखनेवाला वटवृक्ष है ॥ ४४ ॥

---

१. चान्द्रायण-व्रत—चन्द्रमाकी कलाओंके ह्रास एवं वृद्धिके अनुसार उतने ही ग्रास ग्रहण करके किया जानेवाला व्रत 'चान्द्रायण-व्रत' कहलाता है, यह 'पिपीलिका-मध्य' और 'यव-मध्य'—इन नामोंसे दो प्रकारका होता है।

पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः। दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः ॥ ४५ ॥
धनानि भृत्यपौत्राणि सर्वं शोचति वै यदा। तदा प्रेतास्तु तत्रत्याः किङ्कराश्चेदमब्रुवन् ॥ ४६ ॥
क्व धनं क्व सुतो जाया क्व सुहृत् क्व च बान्धवाः। स्वकर्मोपार्जितं भोक्ता मूढ याहि चिरं पथि ॥ ४७ ॥

उस पुरमें यमदूतोंके द्वारा उसे विश्राम कराया जाता है। वहाँ दुःखी होकर वह स्त्री-पुत्रोंके द्वारा प्राप्त सुखोंका स्मरण करता है ॥ ४५ ॥ वह अपने धन, भृत्य और पौत्र आदिके विषयमें जब सोचने लगता है तो वहाँ रहनेवाले यमके किंकर उससे इस प्रकार कहते हैं— ॥ ४६ ॥ धन कहाँ है? पुत्र कहाँ है? पत्नी कहाँ है? मित्र कहाँ है? बन्धु-बान्धव कहाँ हैं? हे मूढ! जीव अपने कर्मोपार्जित फलको ही भोगता है, इसलिये सुदीर्घ कालतक इस यममार्गपर चलो ॥ ४७ ॥

जानासि संबलबलं बलमध्वगानां नो संबलाय यतसे परलोकपान्थ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण यत्र भवतः क्रयविक्रयौ न ॥ ४८ ॥

आबालख्यातमार्गोऽयं नैव मर्त्य श्रुतस्त्वया। पुराणसम्भवं वाक्यं किं द्विजेभ्योऽपि न श्रुतम् ॥ ४९ ॥
एवमुक्तस्ततो दूतैस्ताड्यमानश्च मुद्गरैः। निपतन्नुत्पतन् धावन् पाशैराकृष्यते बलात् ॥ ५० ॥

हे परलोकके राही! तू यह जानता है कि राहगीरोंका बल और संबल पाथेय ही होता है, जिसके लिये तूने प्रयास तो किया नहीं। तू यह भी जानता था कि तुम्हें निश्चित ही उस मार्गपर चलना है और उस रास्तेपर कोई

भी लेन-देन हो नहीं सकता॥ ४८॥ यह मार्ग तो बालकोंको भी विदित रहता है। हे मनुष्य! क्या तुमने इसे सुना नहीं था? क्या तुमने ब्राह्मणोंके मुखसे पुराणोंके वचन सुने नहीं थे॥ ४९॥ इस प्रकार कहकर मुद्गरोंसे पीटा जाता हुआ वह जीव गिरते-पड़ते-दौड़ते हुए बलपूर्वक पाशोंसे खींचा जाता है॥ ५०॥

अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाथवा। मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्॥ ५१॥
तत्र नाम्नास्ति राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक्। तद्दृष्ट्वा भयभीतोऽसौ विश्रामे कुरुते मतिम्॥ ५२॥
उदकं चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तत्र पुरे गतः। त्रैपाक्षिके वै यद्दत्तं स तत्पुरमतिक्रमेत्॥ ५३॥

यहाँ स्नेह अथवा कृपाके कारण पुत्र-पौत्रोंद्वारा दिये हुए मासिक पिण्डको खाता है। उसके बाद वह जीव सौरिपुरको प्रस्थान करता है॥ ५१॥ उस सौरिपुरमें कालके रूपको धारण करनेवाला जङ्गम नामक राजा (रहता) है। उसे देखकर वह जीव भयभीत होकर विश्राम करना चाहता है॥ ५२॥ उस पुरमें गया हुआ वह जीव अपने स्वजनोंके द्वारा दिये हुए त्रैपाक्षिक अन्न-जलको खाकर उस पुरको पार करता है॥ ५३॥

ततो नगेन्द्रभवनं प्रेतो याति त्वरान्वितः। वनानि तत्र रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति दुःखितः॥ ५४॥
निर्घृणैः कृष्यमाणस्तु रुदते च पुनः पुनः। मासद्वयावसाने तु तत्पुरं व्यथितो व्रजेत्॥ ५५॥
भुक्त्वा पिण्डं जलं वस्त्रं दत्तं यद्बान्धवैरिह। कृष्यमाणः पुनः पाशैर्नीयतेऽग्रे च किङ्करैः॥ ५६॥

उसके बाद शीघ्रतापूर्वक वह प्रेत नगेन्द्र-भवनकी ओर जाता है और वहाँ भयंकर वनोंको देखकर दुःखी होकर

रोता है ॥ ५४ ॥ दयारहित दूतोंके द्वारा खींचे जानेपर वह बार-बार रोता है और दो मासके अन्तमें वह दुःखी होकर वहाँ जाता है ॥ ५५ ॥ बान्धवोंद्वारा दिये गये पिण्ड, जल, वस्त्रका उपभोग करके यमकिंकरोंके द्वारा पाशसे बार-बार खींचकर पुनः आगे ले जाया जाता है ॥ ५६ ॥

मासे तृतीये सम्प्राप्ते प्राप्य गन्धर्वपत्तनम् । तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ॥ ५७ ॥
शैलागमं चतुर्थे च मासि प्राप्नोति वै पुरम् । पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि भूरिशः ॥ ५८ ॥
चतुर्थमासिकं पिण्डं भुक्त्वा किञ्चित् सुखी भवेत् । ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासेऽथ पञ्चमे ॥ ५९ ॥

तीसरे मासमें वह गन्धर्वनगरको प्राप्त होता है और वहाँ त्रैमासिक पिण्ड खाकर आगे चलता है ॥ ५७ ॥ चौथे मासमें वह शैलागमपुरमें पहुँचता है और वहाँ प्रेतके ऊपर बहुत अधिक पत्थरोंकी वर्षा होती है ॥ ५८ ॥ (वहाँ) चौथे मासिक पिण्डको खाकर वह कुछ सुखी होता है। उसके बाद पाँचवें महीनेमें वह प्रेत क्रौञ्चपुर पहुँचता है ॥ ५९ ॥

हस्तदत्तं तदा भुङ्क्ते प्रेतः क्रौञ्चपुरे स्थितः । यत्पञ्चमासिकं पिण्डं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत् ॥ ६० ॥
सार्धकैः पञ्चभिर्मासैर्न्यूनषाण्मासिकं व्रजेत् । तत्र दत्तेन पिण्डेन घटेनाप्यायितः स्थितः ॥ ६१ ॥
मुहूर्तार्धं तु विश्रम्य कम्पमानः सुदुःखितः । तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः ॥ ६२ ॥

प्रयाति चित्रभवनं विचित्रो नाम पार्थिवः। यमस्यैवानुजो भ्राता यत्र राज्यं प्रशास्ति हि॥ ६३॥

क्रौञ्चपुरमें स्थित वह प्रेत वहाँ बान्धवोंद्वारा हाथसे दिये गये पाँचवें मासिक पिण्डको खाकर आगे क्रूरपुरकी ओर चलता है॥ ६०॥ साढ़े पाँच मासके बाद (बान्धवोंद्वारा प्रदत्त) ऊनषाण्मासिक पिण्ड और घटदानसे तृप्त होकर वह वहाँ आधे मुहूर्ततक विश्राम करके यमदूतोंके द्वारा डराये जानेपर दुःखसे काँपता हुआ उस पुरको छोड़कर—॥ ६१-६२॥ चित्रभवन नामक पुरको जाता है, जहाँ यमका छोटा भाई विचित्र नामवाला राजा राज्य करता है॥ ६३॥

तं विलोक्य महाकायं यदा भीतः पलायते। तदा सम्मुखमागत्य कैवर्ता इदमब्रुवन्॥ ६४॥
वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम्। नावमादाय सम्प्राप्ता यदि ते पुण्यमीदृशम्॥ ६५॥
दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। इयं सा तीर्यते यस्मात् तस्माद्वैतरणी स्मृता॥ ६६॥

उस विशाल शरीरवाले राजाको देखकर जब वह (जीव) डरसे भागता है, तब सामने आकर कैवर्त (धीवर) उससे यह कहते हैं—॥ ६४॥ हम इस महावैतरणी नदीको पार करनेवालोंके लिये नाव लेकर आये हैं, यदि तुम्हारा इस प्रकारका पुण्य हो तो (इसमें बैठ सकते हो)॥ ६५॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने दानको ही वितरण (देना या बाँटना) कहा है। यह वैतरणी नदी वितरणके द्वारा ही पार की जा सकती है, इसलिये इसको वैतरणी कहा जाता है॥ ६६॥

यदि त्वया प्रदत्ता गौस्तदा नौरुपसर्पति। नाऽन्यथेति वचस्तेषां श्रुत्वा हा दैव भाषते॥ ६७॥

तं दृष्ट्वा क्वथते सा तु तां दृष्ट्वा सोऽतिक्रन्दते। अदत्तदानः पापात्मा तस्यामेव निमज्जति॥ ६८॥
तन्मुखे कण्टकं दत्त्वा दूतैराकाशसंस्थितैः। बडिशेन यथा मत्स्यस्तथा पारं प्रणीयते॥ ६९॥

यदि तुमने वैतरणी गौका दान किया हो तो नौका तुम्हारे पास आयेगी अन्यथा नहीं। उनके ऐसे वचन सुनकर प्रेत 'हा दैव!' ऐसा कहता है॥ ६७॥ उस प्रेतको देखकर वह नदी खौलने लगती है और उसे देखकर प्रेत अत्यन्त क्रन्दन (विलाप) करने लगता है। जिसने अपने जीवनमें कभी दान दिया ही नहीं है, ऐसा पापात्मा उसी (वैतरणी)-में डूबता है॥ ६८॥ तब आकाशमार्गसे चलनेवाले दूत उसके मुखमें काँटा लगाकर वंशीसे मछलीकी भाँति उसे खींचते हुए पार ले जाते हैं॥ ६९॥

षाण्मासिकं च यत्पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति। मार्गे स विलपन् याति बुभुक्षापीडितो ह्यलम्॥ ७०॥
सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत्। तत्र भुङ्क्ते प्रदत्तं तत् सप्तमे मासि पुत्रकैः॥ ७१॥
तत्पुरं तु व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमृच्छति। महद्दुःखमवाप्नोति खे गच्छन् खेचरेश्वर॥ ७२॥

वहाँ षाण्मासिक पिण्ड खाकर वह अत्यधिक भूखसे पीडित होकर विलाप करता हुआ आगेके रास्तेपर चलता है॥ ७०॥ सातवें मासमें वह बह्वापदपुरको जाता है और वहाँ अपने पुत्रोंद्वारा दिये हुए सप्तम मासिक पिण्डको खाता है॥ ७१॥ हे पक्षिराज गरुड! उस पुरको पारकर वह दुःखद नामक पुरको जाता है। आकाशमार्गसे जाता हुआ वह महान् दुःख प्राप्त करता है॥ ७२॥

मास्यष्टमे प्रदत्तं यत्पिण्डं भुक्त्वा प्रसर्पति। नवमे मासि सम्पूर्णे नानाक्रन्दपुरं व्रजेत्॥ ७३॥
नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान्। स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः॥ ७४॥
विहाय तत्पुरं प्रेतस्तर्जितो यमकिङ्करैः। सुतप्तभवनं गच्छेद्दशमे मासि कृच्छ्रतः॥ ७५॥

वहाँ आठवें मासमें दिये हुए पिण्डको खाकर आगे बढ़ता है और नवाँ मास पूर्ण होनेपर नानाक्रन्दपुरको प्राप्त होता है॥ ७३॥ वहाँ क्रन्दन करते हुए अनेक भयावह क्रन्दगणोंको देखकर स्वयं शून्य हृदयवाला वह जीव दुःखी होकर आक्रन्दन करने लगता है॥ ७४॥ उस पुरको छोड़कर वह यमदूतोंके द्वारा भयभीत किया जाता हुआ दसवें महीनेमें अत्यन्त कठिनाईसे सुतप्तभवन नामक नगरमें पहुँचता है॥ ७५॥

पिण्डदानं जलं तत्र भुक्त्वाऽपि न सुखी भवेत्। मासि चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति॥ ७६॥
दशैकमासिकं तत्र भुङ्क्ते दत्तं सुतादिभिः। सार्धे चैकादशे मासि पयोवर्षणमृच्छति॥ ७७॥
मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः। न्यूनाब्दिकं च यच्छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते स दुःखितः॥ ७८॥

वहाँ पुत्रादिसे पिण्डदान और जलाञ्जलि प्राप्त करके भी सुखी नहीं होता। ग्यारहवाँ मास पूरा होनेपर वह रौद्रपुरको जाता है॥ ७६॥ और पुत्रादिके द्वारा दिये हुए एकादश मासिक पिण्डको वहाँ खाता है। साढ़े ग्यारह मास बीतनेपर वह जीव पयोवर्षण नामक नगरमें पहुँचता है॥ ७७॥ वहाँ प्रेतोंको दुःख देनेवाले मेघ घनघोर वर्षा करते हैं, वहाँपर दुःखी वह प्रेत ऊनाब्दिक श्राद्ध (के पिण्ड)-को खाता है॥ ७८॥

सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत्। हिमाच्छतगुणं तत्र महाशीतं तपत्यपि॥ ७९॥
शीतार्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश। तिष्ठते बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति॥ ८०॥
किङ्करास्ते वदन्त्यत्र क्व ते पुण्यं हि तादृशम्। भुक्त्वा च वार्षिकं पिण्डं धैर्यमालम्बते पुनः॥ ८१॥

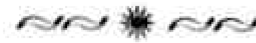
इसके बाद वर्ष पूरा होनेपर वह जीव शीताढ्य नामक नगरको प्राप्त होता है, वहाँ हिमसे भी सौ गुनी अधिक (महान्) ठंड पड़ती है॥ ७९॥ शीतसे दुःखी तथा क्षुधित वह जीव (इस आशासे) दसों दिशाओंमें देखता है कि शायद कहीं कोई हमारा बान्धव हो, जो मेरे दुःखको दूर कर सके॥ ८०॥ तब यमके दूत कहते हैं—तुम्हारा ऐसा पुण्य कहाँ है? फिर वार्षिक पिण्डको खाकर वह धैर्य धारण करता है॥ ८१॥

ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये। बहुभीतिपुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत्॥ ८२॥
अङ्गुष्ठमात्रो वायुश्च कर्मभोगाय खेचर। यातनादेहमासाद्य सह याम्यैः प्रयाति च॥ ८३॥
और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप। कष्टेन ते पुरं यान्ति गृहीत्वा दृढबन्धनैः॥ ८४॥

उसके बाद वर्षके अन्तमें यमपुरके निकट पहुँचनेपर वह प्रेत बहुभीतिपुरमें जाकर हाथभर मापके अपने शरीरको छोड़ देता है॥ ८२॥ हे पक्षी! पुनः कर्मभोगके लिये अङ्गुष्ठमात्रके वायुस्वरूप यातनादेहको प्राप्त करके वह यमदूतोंके साथ जाता है॥ ८३॥ हे कश्यपात्मज! जिन्होंने और्ध्वदैहिक (मरणकालिक) दान नहीं दिये हैं, वे यमदूतोंके द्वारा दृढ़ बन्धनोंसे बँधे हुए अत्यन्त कष्टसे यमपुरको जाते हैं॥ ८४॥

धर्मराजपुरे सन्ति चतुर्द्वाराणि खेचर। यत्रायं दक्षिणद्वारमार्गस्ते परिकीर्तितः॥ ८५॥
अस्मिन् पथि महाघोरे क्षुत्तृषाश्रमपीडिताः। यथा यान्ति तथा प्रोक्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ८६॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे यममार्गनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥



हे आकाशगामी! धर्मराजपुरमें चार द्वार हैं, जिनमेंसे दक्षिण द्वारके मार्गका तुमसे वर्णन कर दिया॥ ८५॥ इस महान् भयंकर मार्गमें भूख-प्यास और श्रमसे दुःखी जीव जिस प्रकार जाते हैं, वह सब मैंने बतला दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो॥ ८६॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'यममार्गनिरूपण' नामका दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥



तीसरा अध्याय

यमयातनाका वर्णन, चित्रगुप्तद्वारा श्रवणोंसे प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मके विषयमें पूछना, श्रवणोंद्वारा वह सब धर्मराजको बताना और धर्मराजद्वारा दण्डका निर्धारण

गरुड उवाच

यममार्गमतिक्रम्य गत्वा पापी यमालये। कीदृशीं यातनां भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! यममार्गकी यात्रा पूरी करके यमके भवनमें जाकर पापी किस प्रकारकी यातनाको भोगता है? वह मुझे बतलाइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

आद्यन्तं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व विनतात्मज। कथ्यमानेऽपि नरके त्वं भविष्यसि कम्पितः॥ २ ॥
चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि काश्यप। बहुभीतिपुरादग्रे धर्मराजपुरं महत्॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे विनताके पुत्र गरुड! मैं (नरकयातनाको) आदिसे अन्ततक कहूँगा, सुनो। मेरे द्वारा नरकका वर्णन किये जानेपर (उसे सुननेमात्रसे ही) तुम काँप उठोगे॥ २॥ हे कश्यपनन्दन! बहुभीतिपुरके आगे चौवालीस योजनमें फैला हुआ धर्मराजका विशाल पुर है॥ ३॥

हाहाकारसमायुक्तं दृष्ट्वा क्रन्दति पातकी। तत्क्रन्दनं समाकर्ण्य यमस्य पुरचारिणः॥ ४ ॥
गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजः प्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा॥ ५ ॥
स गत्वा चित्रगुप्ताय ब्रूते तस्य शुभाशुभम्। ततस्तं चित्रगुप्तोऽपि धर्मराजं निवेदयेत्॥ ६ ॥

हाहाकारसे परिपूर्ण उस पुरको देखकर पापी प्राणी क्रन्दन करने लगता है। उसके क्रन्दनको सुनकर यमपुरमें विचरण करनेवाले (यमके गण)—॥ ४॥ प्रतीहार (द्वारपाल)-के पास जाकर उस (पापी)-के विषयमें बताते हैं। धर्मराजके द्वारपर सर्वदा धर्मध्वज नामक प्रतीहार स्थित रहता है॥ ५॥ वह (द्वारपाल) जाकर चित्रगुप्तसे उस प्राणीके शुभ और अशुभ कर्मको बताता है। उसके बाद चित्रगुप्त भी उसके विषयमें धर्मराजसे निवेदन करते हैं॥ ६॥

नास्तिका ये नरास्ताक्ष्र्य महापापरताः सदा। तांश्च सर्वान् यथायोग्यं सम्यग्जानाति धर्मराट्॥ ७ ॥
तथापि चित्रगुप्ताय तेषां पापं स पृच्छति। चित्रगुप्तोऽपि सर्वज्ञः श्रवणान् परिपृच्छति॥ ८ ॥
श्रवणा ब्रह्मणः पुत्राः स्वर्भूपातालचारिणः। दूरश्रवणविज्ञाना दूरदर्शनचक्षुषः॥ ९ ॥

हे ताक्ष्र्य! जो नास्तिक और महापापी प्राणी हैं, उन सभीके विषयमें धर्मराज यथार्थरूपसे भलीभाँति जानते हैं॥ ७॥ तो भी (वे) चित्रगुप्तसे उन प्राणियोंके पापके विषयमें पूछते हैं और सर्वज्ञ चित्रगुप्त भी श्रवणोंसे पूछते हैं॥ ८॥ श्रवण ब्रह्माके पुत्र हैं। वे स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालमें विचरण करनेवाले तथा दूरसे ही सुन एवं जान

लेनेवाले हैं। उनके नेत्र सुदूरके दृश्योंको भी देख लेनेवाले हैं॥ ९॥

तेषां पत्न्यस्तथाभूताः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः। स्त्रीणां विचेष्टितं सर्वं तां विजानन्ति तत्त्वतः॥ १०॥
नरैः प्रच्छन्नं प्रत्यक्षं यत्प्रोक्तं च कृतं च यत्। सर्वमावेदयन्त्येव चित्रगुप्ताय ते च ताः॥ ११॥
चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां शुभाशुभम्। मनोवाक्कायजं कर्म सर्वं जानन्ति तत्त्वतः॥ १२॥

श्रवणी नामकी उनकी पृथक्-पृथक् पत्नियाँ भी उसी प्रकारके स्वरूपवाली हैं अर्थात् श्रवणोंके समान ही हैं। वे स्त्रियोंकी सभी प्रकारकी चेष्टाओंको तत्त्वतः जानती हैं॥ १०॥ मनुष्य छिपकर अथवा प्रत्यक्षरूपसे जो कुछ करता और कहता है, वह सब श्रवण एवं श्रवणियाँ चित्रगुप्तसे बताते हैं॥ ११॥ वे श्रवण और श्रवणियाँ धर्मराजके गुप्तचर हैं, जो मनुष्यके मानसिक, वाचिक और कायिक—सभी प्रकारके शुभ और अशुभ कर्मोंको ठीक-ठीक जानते हैं॥ १२॥

एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्यामर्त्याधिकारिणाम्। कथयन्ति नृणां कर्म श्रवणाः सत्यवादिनः॥ १३॥
व्रतैर्दानैश्च सत्योक्त्या यस्तोषयति तान्नरः। भवन्ति तस्य ते सौम्याः स्वर्गमोक्षप्रदायिनः॥ १४॥
पापिनां पापकर्माणि ज्ञात्वा ते सत्यवादिनः। धर्मराजपुरः प्रोक्ता जायन्ते दुःखदायिनः॥ १५॥

मनुष्य और देवताओंके अधिकारी वे श्रवण और श्रवणियाँ सत्यवादी हैं। उनके पास ऐसी शक्ति है, जिसके बलपर वे मनुष्यकृत कर्मोंको बतलाते हैं॥ १३॥ व्रत, दान और सत्य वचनसे जो मनुष्य उन्हें प्रसन्न करता है,

उसके प्रति वे सौम्य तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हो जाते हैं ॥ १४ ॥ वे सत्यवादी श्रवण पापियोंके पापकर्मोंको जानकर धर्मराजके सम्मुख यथावत् कह देनेके कारण (पापियोंके लिये) दुःखदायी हो जाते हैं ॥ १५ ॥

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्॥ १६ ॥
धर्मराजश्चित्रगुप्तः श्रवणा भास्करादयः। कायस्थं तत्र पश्यन्ति पापं पुण्यं च सर्वशः॥ १७ ॥
एवं सुनिश्चयं कृत्वा पापिनां पातकं यमः। आहूय तन्निजं रूपं दर्शयत्यति भीषणम्॥ १८ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल, हृदय, यम, दिन, रात, दोनों संध्याएँ और धर्म—ये मनुष्यके वृत्तान्तको जानते हैं ॥ १६ ॥ धर्मराज, चित्रगुप्त, श्रवण और सूर्य आदि मनुष्यके शरीरमें स्थित सभी पाप और पुण्योंको पूर्णतया देखते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार पापियोंके पापके विषयमें सुनिश्चित जानकारी प्राप्त करके यम उन्हें बुलाकर अपना अत्यन्त भयंकर रूप दिखाते हैं ॥ १८ ॥

पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयङ्करम्। दण्डहस्तं महाकायं महिषोपरिसंस्थितम्॥ १९ ॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषकज्जलाचलसन्निभम्। विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम्॥ २० ॥
योजनत्रयविस्तारं वापीतुल्यविलोचनम्। दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम्॥ २१ ॥

वे पापी यमके ऐसे भयंकर रूपको देखते हैं—जो हाथमें दण्ड लिये हुए, बहुत बड़ी कायावाले, भैंसेके ऊपर

संस्थित, प्रलयकालीन मेघके समान आवाजवाले, काजलके पर्वतके समान, बिजलीकी प्रभावाले, आयुधोंके कारण भयंकर, बत्तीस भुजाओंवाले, तीन योजनके लम्बे-चौड़े विस्तारवाले, बावलीके समान गोल नेत्रवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण भयंकर मुखवाले, लाल-लाल आँखोंवाले और लम्बी नाकवाले हैं॥ १९—२१॥

मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः। सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके॥ २२॥
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हा हेति वदते खलः। अदत्तदानः पापात्मा कम्पते क्रन्दते पुनः॥ २३॥
ततो वदति तान्सर्वान् क्रन्दमानांश्च पापिनः। शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया॥ २४॥

मृत्यु और ज्वर आदिसे संयुक्त होनेके कारण चित्रगुप्त भी भयावह हैं। यमके समान भयानक सभी दूत उनके समीप (पापियोंको डरानेके लिये) गरजते रहते हैं॥ २२॥ उन (चित्रगुप्त)-को देखकर भयभीत होकर पापी हाहाकार करने लगता है। दान न करनेवाला वह पापात्मा काँपता है और बार-बार विलाप करता है॥ २३॥ तब चित्रगुप्त यमकी आज्ञासे क्रन्दन करते हुए और अपने पापकर्मोंके विषयमें सोचते हुए उन सभी प्राणियोंसे कहते हैं॥ २४॥

भो भोः पापा दुराचारा अहङ्कारप्रदूषिताः। किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभिः॥ २५॥
कामक्रोधाद्युत्पन्नं सङ्गमेन च पापिनाम्। तत्पापं दुःखदं मूढाः किमर्थं चरितं जनाः॥ २६॥
कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यन्तहर्षिताः। तथैव यातना भोग्याः किमिदानीं पराङ्मुखाः॥ २७॥

अरे पापियो! दुराचारियो! अहंकारसे दूषितो! तुम अविवेकियोंने क्यों पाप कमाया है?॥ २५॥ कामसे,

क्रोधसे तथा पापियोंकी संगतिसे जो पाप तुमने किया है, वह दुःख देनेवाला है, फिर हे मूर्खजनो! तुमने वह (पापकर्म) क्यों किया?॥ २६॥ पूर्वजन्ममें तुम लोगोंने जिस प्रकार अत्यन्त हर्षपूर्वक पापकर्मोंको किया है, उसी प्रकार यातना भी भोगनी चाहिये। इस समय (यातना भोगनेसे) क्यों पराङ्मुख हो रहे हो?॥ २७॥

कृतानि यानि पापानि युष्माभिः सुबहून्यपि। तानि पापानि दुःखस्य कारणं न वयं जनाः॥ २८॥
मूर्खेऽपि पण्डिते वापि दरिद्रे वा श्रियान्विते। सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृतः॥ २९॥
चित्रगुप्तस्येति वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा। शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः॥ ३०॥

तुम लोगोंने जो बहुत-से पाप किये हैं, वे पाप ही तुम्हारे दुःखके कारण हैं। इसमें हमलोग कारण नहीं हैं॥ २८॥ मूर्ख हो या पण्डित, दरिद्र हो या धनवान् और सबल हो या निर्बल—यमराज सभीसे समान व्यवहार करनेवाले कहे गये हैं॥ २९॥ चित्रगुप्तके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर वे पापी अपने कर्मोंके विषयमें सोचते हुए निश्चेष्ट होकर चुपचाप बैठ जाते हैं॥ ३०॥

धर्मराजोऽपि तान् दृष्ट्वा चोरवन्निश्चलान् स्थितान्। आज्ञापयति पापानां शास्ति चैव यथोचितम्॥ ३१॥
ततस्ते निर्दया दूतास्ताडयित्वा वदन्ति च। गच्छ पापिन् महाघोरान् नरकानतिभीषणान्॥ ३२॥
यमाज्ञाकारिणो दूताः प्रचण्डचण्डकादयः। एकपाशेन तान् बद्ध्वा नयन्ति नरकान् प्रति॥ ३३॥

धर्मराज भी चोरकी भाँति निश्चल बैठे हुए उन पापियोंको देखकर उनके पापोंका मार्जन करनेके लिये यथोचित

दण्ड देनेकी आज्ञा करते हैं॥ ३१॥ इसके बाद वे निर्दयी दूत (उन्हें) पीटते हुए कहते हैं—हे पापी! महान् घोर और अत्यन्त भयानक नरकोंमें चलो॥ ३२॥ यमके आज्ञाकारी प्रचण्ड और चण्डक आदि नामवाले दूत एक पाशसे उन्हें बाँधकर नरककी ओर ले जाते हैं॥ ३३॥

तत्र वृक्षो महानेको ज्वलदग्निसमप्रभः। पञ्चयोजनविस्तीर्णः एकयोजनमुच्छ्रितः॥ ३४॥
तद्वृक्षे शृङ्खलैर्बद्ध्वाऽधोमुखं ताडयन्ति ते। रुदन्ति ज्वलितास्तत्र तेषां त्राता न विद्यते॥ ३५॥
तस्मिन्नेव शाल्मलीवृक्षे लम्बन्तेऽनेकपापिनः। क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता यमदूतैश्च ताडिताः॥ ३६॥
क्षमध्वं भोऽपराधं मे कृताञ्जलिपुटा इति। विज्ञापयन्ति तान् दूतान् पापिष्ठास्ते निराश्रयाः॥ ३७॥

वहाँ जलती हुई अग्निके समान प्रभावाला एक विशाल वृक्ष है, जो पाँच योजनमें फैला हुआ है तथा एक योजन ऊँचा है॥ ३४॥ उस वृक्षमें नीचे मुख करके उसे साँकलोंसे बाँधकर वे दूत पीटते हैं। वहाँ जलते हुए वे रोते हैं, (पर वहाँ) उनका कोई रक्षक नहीं होता॥ ३५॥ उसी शाल्मली-वृक्षमें भूख और प्याससे पीडित तथा यमदूतोंद्वारा पीटे जाते हुए अनेक पापी लटकते रहते हैं॥ ३६॥ वे आश्रयविहीन पापी अञ्जलि बाँधकर—'हे यमदूतो! मेरे अपराधको क्षमा कर दो', ऐसा उन दूतोंसे निवेदन करते हैं॥ ३७॥

पुनः पुनश्च ते दूतैर्हन्यन्ते लौहयष्टिभिः। मुद्गरैस्तोमरैः कुन्तैर्गदाभिर्मुसलैर्भृशम्॥ ३८॥
ताडनाच्चैव निश्चेष्टा मूर्च्छिताश्च भवन्ति ते। तथा निश्चेष्टितान् दृष्ट्वा किङ्करास्ते वदन्ति हि॥ ३९॥

भो भोः पापा दुराचाराः किमर्थं दुष्टचेष्टितम्। सुलभानि न दत्तानि जलान्यन्नान्यपि क्वचित्॥ ४०॥

बार-बार लोहेकी लाठियों, मुद्गरों, भालों, बर्छियों, गदाओं और मूसलोंसे उन दूतोंके द्वारा वे अत्यधिक मारे जाते हैं॥ ३८॥ मारनेसे (जब) वे चेष्टारहित और मूर्च्छित हो जाते हैं, तब उन निश्चेष्ट पापियोंको देखकर यमके दूत कहते हैं॥ ३९॥ अरे दुराचारियो! पापियो! तुमलोगोंने दुराचरण क्यों किया? सुलभ होनेवाले भी जल और अन्नका दान कभी क्यों नहीं दिया?॥ ४०॥

ग्रासार्द्धमपि नो दत्तं न श्ववायसयोर्बलिम्। नमस्कृता नातिथयो न कृतं पितृतर्पणम्॥ ४१॥
यमस्य चित्रगुप्तस्य न कृतं ध्यानमुत्तमम्। न जप्तश्च तयोर्मन्त्रो न भवेद्येन यातना॥ ४२॥
नापि किञ्चित्कृतं तीर्थं पूजिता नैव देवताः। गृहाश्रमस्थितेनापि हन्तकारोऽपि नोद्धृतः॥ ४३॥

(तुमलोगोंने) आधा ग्रास भी कभी किसीको नहीं दिया और न ही कुत्ते तथा कौएके लिये बलि ही दी। अतिथियोंको नमस्कार नहीं किया और पितरोंका तर्पण नहीं किया॥ ४१॥ यमराज तथा चित्रगुप्तका उत्तम ध्यान भी नहीं किया और उनके मन्त्रोंका जप नहीं किया, जिससे तुम्हें यह यातना नहीं होती॥ ४२॥ कभी कोई तीर्थ-यात्रा नहीं की, देवताओंकी पूजा भी नहीं की। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी तुमने हन्तकार[1] नहीं निकाला॥ ४३॥

१. हन्तकार—भोजनके पूर्व चौकेमें बलिवैश्वदेव तथा पञ्चबलिकी विधि है। पञ्चबलिमें गाय, कुत्ते, कौए, कीट (कीड़े-मकोड़े) तथा अतिथिदेव—इन पाँचोंके निमित्त भोजनका कुछ अंश निकालनेका विधान है। इसे हन्तकार कहा जाता है। जहाँ बलिवैश्वदेव सम्भव नहीं होता, वहाँ माताएँ अग्निमें अन्नकी आहुति देकर गौ आदिके लिये कुछ भोजनसामग्री निकाल देती हैं।

शुश्रूषिताश्च नो सन्तो भुङ्क्ष्व पापफलं स्वयम्। यतस्त्वं धर्महीनोऽसि ततः संताड्यसे भृशम्॥ ४४॥
क्षमापराधं कुरुते भगवान् हरिरीश्वरः। वयं तु सापराधानां दण्डदा हि तदाज्ञया॥ ४५॥
एवमुक्त्वा च ते दूता निर्दयं ताडयन्ति तान्। ज्वलदङ्गारसदृशाः पतितास्ताडनादधः॥ ४६॥

संतोंकी सेवा की नहीं, इसलिये (अब) स्वयं किये गये पापका फल भोगो। चूँकि तुम धर्महीन हो, इसलिये तुम्हें बहुत अधिक पीटा जा रहा है॥ ४४॥ भगवान् हरि ही ईश्वर हैं, वे ही अपराधोंको क्षमा करनेमें समर्थ हैं, हम तो उन्हींकी आज्ञासे अपराधियोंको दण्ड देनेवाले हैं॥ ४५॥ ऐसा कहकर वे दूत निर्दयतापूर्वक उन्हें पीटते हैं और उनसे पीटे जानेके कारण वे जलते हुए अंगारके समान नीचे गिर जाते हैं॥ ४६॥

पतनात्तस्य पत्रैश्च गात्रच्छेदो भवेत्ततः। तानधः पतिताञ्श्वानो भक्षयन्ति रुदन्ति ते॥ ४७॥
रुदन्तस्ते ततो दूतैर्मुखमापूर्य रेणुभिः। निबद्ध्य विविधैः पाशैर्हन्यन्ते केऽपि मुद्गरैः॥ ४८॥
पापिनः केऽपि भिद्यन्ते क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा। क्षिप्त्वा चाऽन्ये धरापृष्ठे कुठारैः खण्डशः कृताः॥ ४९॥

गिरनेसे उस (शाल्मली) वृक्षके पत्तोंसे उनका शरीर कट जाता है। नीचे गिरे हुए उन प्राणियोंको कुत्ते खाते हैं और वे रोते हैं॥ ४७॥ रोते हुए उन पापियोंके मुखमें यमदूत धूल भर देते हैं तथा कुछ पापियोंको विविध पाशोंसे बाँधकर मुद्गरोंसे पीटते हैं॥ ४८॥ कुछ पापी आरेसे काष्ठकी भाँति दो टुकड़ोंमें किये जाते हैं और कुछ भूमिपर गिराकर कुल्हाड़ीसे खण्ड-खण्ड किये जाते हैं॥ ४९॥

अर्धं खात्वाऽवटे केचिद्भिद्यन्ते मूर्ध्नि सायकैः। अपरे यन्त्रमध्यस्थाः पीड्यन्ते चेक्षुदण्डवत्॥ ५०॥
केचित् प्रज्वलमानैस्तु साङ्गारैः परितो भृशम्। उल्मुकैर्वेष्टयित्वा च ध्मायन्ते लौहपिण्डवत्॥ ५१॥
केचिद्घृतमये पाके तैलपाके तथाऽपरे। कटाहे क्षिप्तवटवत्प्रक्षिप्यन्ते यतस्ततः॥ ५२॥

कुछको गड्ढेमें आधा गाड़कर सिरमें बाणोंसे भेदन किया जाता है। कुछ दूसरे, पेरनेवाले यन्त्रमें डालकर इक्षुदण्ड (गन्ने)-की भाँति पेरे जाते हैं॥ ५०॥ कुछको चारों ओरसे जलते हुए अंगारोंसे युक्त उल्मुक (जलती हुई लकड़ी)-से ढक करके लौहपिण्डकी भाँति धधकाया जाता है॥ ५१॥ कुछको घीके खौलते हुए कड़ाहेमें, कुछको तेलके कड़ाहेमें तले जाते हुए बड़ेकी भाँति इधर-उधर चलाया जाता है॥ ५२॥

केचिन्मत्तगजेन्द्राणां क्षिप्यन्ते पुरतः पथि। बद्ध्वा हस्तौ च पादौ च क्रियन्ते केऽप्यधोमुखाः॥ ५३॥
क्षिप्यन्ते केऽपि कूपेषु पात्यन्ते केऽपि पर्वतात्। निमग्नाः कृमिकुण्डेषु तुद्यन्ते कृमिभिः परे॥ ५४॥
वज्रतुण्डैर्महाकाकैर्गृध्रैरामिषगृध्नुभिः। निष्कृष्यन्ते शिरोदेशे नेत्रे वास्ये च चञ्चुभिः॥ ५५॥

किन्हींको मतवाले गजेन्द्रोंके सम्मुख रास्तेमें फेंक दिया जाता है, किन्हींको हाथ और पैर बाँधकर अधोमुख लटकाया जाता है॥ ५३॥ किन्हींको कुँएमें फेंका जाता है, किन्हींको पर्वतोंसे गिराया जाता है, कुछ दूसरे कीड़ोंसे युक्त कुण्डोंमें डुबो दिये जाते हैं, जहाँ वे कीड़ोंके द्वारा व्यथित होते हैं॥ ५४॥ कुछ (पापी) वज्रके समान चोंचवाले बड़े-बड़े कौओं, गीधों और मांसभोजी पक्षियोंद्वारा शिरोदेशमें, नेत्रमें और मुखमें चोंचोंसे आघात करके नोंचे जाते हैं॥ ५५॥

ऋणं वै प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहि धनं मम। यमलोके मया दृष्टो धनं मे भक्षितं त्वया॥ ५६॥
एवं विवदमानानां पापिनां नरकालये। छित्त्वा संदंशकैर्दूता मांसखण्डान् ददन्ति च॥ ५७॥
एवं संताड्य तान् दूताः संकृष्य यमशासनात्। तामिस्रादिषु घोरेषु क्षिपन्ति नरकेषु च॥ ५८॥

कुछ दूसरे पापियोंसे ऋणको वापस करनेकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—'मेरा धन दो, मेरा धन दो। यमलोकमें मैंने तुम्हें देख लिया है, मेरा धन तुम्हींने लिया है'॥ ५६॥ नरकमें इस प्रकार विवाद करते हुए पापियोंके अङ्गोंसे सड़सियोंद्वारा मांस नोंचकर (यमदूत) उन्हें देते हैं॥ ५७॥ इस प्रकार उन पापियोंको सम्यक् प्रताडित करके यमकी आज्ञासे यमदूत खींचकर तामिस्र आदि घोर नरकोंमें फेंक देते हैं॥ ५८॥

नरका दुःखबहुलास्तत्र वृक्षसमीपतः। तेष्वस्ति यन्महद्दुःखं तद्वाचामप्यगोचरम्॥ ५९॥
चतुरशीतिलक्षाणि नरकाः सन्ति खेचर। तेषां मध्ये घोरतमा धौरेयास्त्वेकविंशतिः॥ ६०॥

उस वृक्षके समीपमें ही बहुत दुःखोंसे परिपूर्ण नरक हैं, जिनमें प्राप्त होनेवाले महान् दुःखोंका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता॥ ५९॥ हे आकाशचारिन् गरुड! नरकोंकी संख्या चौरासी लाख है, उनमेंसे अत्यन्त भयंकर और प्रमुख नरकोंकी संख्या इक्कीस है॥ ६०॥

तामिस्रो लोहशंकुश्च महारौरवशाल्मली। रौरवः कुड्मलः कालसूत्रकः पूतिमृत्तिकः॥ ६१॥

संघातो लोहितोदश्च सविषः संप्रतापनः। महानिरयकाकोलौ सञ्जीवनमहापथौ॥ ६२॥
अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च। सम्प्रतापननामैकस्तपनस्त्वेकविंशतिः॥ ६३॥
नानापीडामयाः सर्वे नानाभेदैः प्रकल्पिताः। नानापापविपाकाश्च किङ्करौघैरधिष्ठिताः॥ ६४॥

तामिस्र, लोहशंकु, महारौरव, शाल्मली, रौरव, कुड्मल, कालसूत्रक, पूतिमृत्तिक, संघात, लोहितोद, सविष, संप्रतापन, महानिरय, काकोल, संजीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक, सम्प्रतापन तथा तपन—ये इक्कीस नरक हैं॥ ६१—६३॥ ये सभी अनेक प्रकारकी यातनाओंसे परिपूर्ण होनेके कारण अनेक भेदोंसे परिकल्पित हैं। अनेक प्रकारके पापोंका फल इनमें प्राप्त होता है और ये यमके दूतोंसे अधिष्ठित हैं॥ ६४॥

एतेषु पतिता मूढाः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः। यत्र भुञ्जन्ति कल्पान्तः तास्ता नरकयातनाः॥ ६५॥
यास्तामिस्रान्धतामिस्ररौरवाद्याश्च यातनाः। भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः॥ ६६॥
एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा। विसृज्येहोभयं प्रेत्यभुङ्क्ते तत्फलमीदृशम्॥ ६७॥

इन नरकोंमें गिरे हुए मूर्ख, पापी, अधर्मी जीव कल्पपर्यन्त उन-उन नरक-यातनाओंको भोगते हैं॥ ६५॥ तामिस्र और अन्धतामिस्र तथा रौरवादि नरकोंकी जो यातनाएँ हैं, उन्हें स्त्री और पुरुष पारस्परिक संगसे निर्मितकर भोगते हैं॥ ६६॥ इस प्रकार कुटुम्बका भरण-पोषण करनेवाला अथवा केवल अपना पेट भरनेवाला भी यहाँ कुटुम्ब और शरीर दोनों छोड़कर मृत्युके अनन्तर इस प्रकारका फल भोगता है॥ ६७॥



रौरव नरक



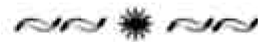
महारौरव नरक

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम्। कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम्॥ ६८॥
दैवेनासादितं तस्य शमले निरये पुमान्। भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतद्रव्य इवातुरः॥ ६९॥

प्राणियोंके साथ द्रोह करके भरण-पोषण किये गये अपने (स्थूल) शरीरको यहीं छोड़कर पापकर्मरूपी पाथेयके साथ पापी अकेला ही अंधकारपूर्ण नरकमें जाता है॥ ६८॥ जिसका द्रव्य चोरी चला गया है ऐसे व्यक्तिकी भाँति पापीपुरुष दैवसे प्राप्त (अधर्मपूर्वक) कुटुम्बपोषणके फलको नरकमें आतुर होकर भोगता है॥ ६९॥

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः। याति जीवोऽन्धतामिस्त्रं चरमं तमसः पदम्॥ ७०॥
अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः। क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्रा व्रजेच्छुचिः॥ ७१॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे यमयातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



केवल अधर्मसे कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये प्रयत्नशील व्यक्ति अंधकारकी पराकाष्ठा अन्धतामिस्त्र नामक नरकमें जाता है॥ ७०॥ मनुष्यलोकके नीचे नरकोंकी जितनी यातनाएँ हैं, क्रमशः उनका भोग भोगते हुए (वह पापी) शुद्ध होकर पुनः इस मर्त्यलोकमें जन्म पाता है॥ ७१॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'यमयातनानिरूपण' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥



चौथा अध्याय

नरक प्रदान करानेवाले पापकर्म

गरुड उवाच

कैर्गच्छन्ति महामार्गे वैतरण्यां पतन्ति कैः । कैः पापैर्नरके यान्ति तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! किन पापोंके कारण पापी मनुष्य यमलोकके महामार्गमें जाते हैं और किन पापोंसे वैतरणीमें गिरते हैं तथा किन पापोंके कारण नरकमें जाते हैं? वह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

सदैवाकर्मनिरताः शुभकर्मपराङ्मुखाः। नरकान्नरकं यान्ति दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम्॥ २ ॥

धर्मराजपुरे यान्ति त्रिभिर्द्वारैस्तु धार्मिकाः। पापास्तु दक्षिणद्वारमार्गेणैव व्रजन्ति तत्॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले—सदा पापकर्मोंमें लगे हुए, शुभ कर्मसे विमुख प्राणी एक नरकसे दूसरे नरकको, एक दुःखके बाद दूसरे दुःखको तथा एक भयके बाद दूसरे भयको प्राप्त होते हैं॥ २॥ धार्मिक जन धर्मराजपुरमें तीन दिशाओंमें स्थित द्वारोंसे जाते हैं और पापी पुरुष दक्षिण-द्वारके मार्गसे वहाँ जाते हैं॥ ३॥

अस्मिन्नेव महादुःखे मार्गे वैतरणी नदी। तत्र ये पापिनो यान्ति तानहं कथयामि ते॥ ४ ॥

ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च गोघ्ना वा बालघातकाः। स्त्रीघाती गर्भपाती च ये च प्रच्छन्नपापिनः॥ ५ ॥

ये हरन्ति गुरोर्द्रव्यं देवद्रव्यं द्विजस्य वा। स्त्रीद्रव्यहारिणो ये च बालद्रव्यहराश्च ये॥ ६ ॥
ये ऋणं न प्रयच्छन्ति ये वै न्यासापहारकाः। विश्वासघातका ये च सविषान्नेन मारकाः॥ ७ ॥
दोषग्राही गुणाश्लाघी गुणवत्सु समत्सराः। नीचानुरागिणो मूढाः सत्सङ्गतिपराङ्मुखाः॥ ८ ॥
तीर्थसज्जनसत्कर्मगुरुदेवविनिन्दकाः। पुराणवेदमीमांसान्यायवेदान्तदूषकाः॥ ९ ॥
हर्षिता दुःखितं दृष्ट्वा हर्षिते दुःखदायकाः। दुष्टवाक्यस्य वक्तारो दुष्टचित्ताश्च ये सदा॥ १०॥

इसी महादुःखदायी (दक्षिण) मार्गमें वैतरणी नदी है; उसमें जो पापी पुरुष जाते हैं, उन्हें मैं तुम्हें बताता हूँ— ॥ ४॥ जो ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले, सुरापान करनेवाले, गोघाती, बालहत्यारे, स्त्रीकी हत्या करनेवाले, गर्भपात करनेवाले और गुप्तरूपसे पाप करनेवाले हैं, जो गुरुके धनको हरण करनेवाले, देवता अथवा ब्राह्मणका धन हरण करनेवाले, स्त्रीद्रव्यहारी, बालद्रव्यहारी हैं, जो ऋण लेकर उसे न लौटानेवाले, धरोहरका अपहरण करनेवाले, विश्वासघात करनेवाले, विषान्न देकर मार डालनेवाले, दूसरेके दोषको ग्रहण करनेवाले, गुणोंकी प्रशंसा न करनेवाले, गुणवानोंके साथ डाह रखनेवाले, नीचोंके साथ अनुराग रखनेवाले, मूढ, सत्संगतिसे दूर रहनेवाले हैं, जो तीर्थों, सज्जनों, सत्कर्मों, गुरुजनों और देवताओंकी निन्दा करनेवाले हैं, पुराण, वेद, मीमांसा, न्याय और वेदान्तको दूषित करनेवाले हैं॥ ५—९॥ दुःखी व्यक्तिको देखकर प्रसन्न होनेवाले, प्रसन्नको दुःख देनेवाले, दुर्वचन बोलनेवाले तथा सदा दूषित चित्तवृत्तिवाले हैं॥ १०॥

न शृण्वन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवार्तां कदापि न। आत्मसम्भाविता: स्तब्धा मूढा: पण्डितमानिन:॥ ११॥
एते चान्ये च बहव: पापिष्ठा धर्मवर्जिता:। गच्छन्ति यममार्गे हि रोदमाना दिवानिशम्॥ १२॥
यमदूतैस्ताड्यमाना यान्ति वैतरणीं प्रति। तस्यां पतन्ति ये पापास्तानहं कथयामि ते॥ १३॥

जो हितकर वाक्य और शास्त्रीय वचनोंको कभी न सुननेवाले, अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाले, घमण्डी, मूर्ख होते हुए अपनेको विद्वान् समझनेवाले हैं—ये तथा अन्य बहुत पापोंका अर्जन करनेवाले अधर्मी जीव रात-दिन रोते हुए यममार्गमें जाते हैं॥ ११-१२॥ यमदूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए (वे पापी) वैतरणीकी ओर जाते हैं और उसमें गिरते हैं, ऐसे उन पापियोंके विषयमें मैं तुम्हें बताता हूँ—॥ १३॥

मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च। आचार्यं चापि पूज्यं च तस्यां मज्जन्ति ते नरा:॥ १४॥
पतिव्रतां साधुशीलां कुलीनां विनयान्विताम्। स्त्रियं त्यजन्ति ये द्वेषाद्वैतरण्यां पतन्ति ते॥ १५॥
सतां गुणसहस्रेषु दोषानारोपयन्ति ये। तेष्ववज्ञां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते॥ १६॥

जो माता, पिता, गुरु, आचार्य तथा पूज्यजनोंको अपमानित करते हैं, वे मनुष्य वैतरणीमें डूबते हैं॥ १४॥ जो पुरुष पतिव्रता, सच्चरित्र, उत्तम कुलमें उत्पन्न, विनयसे युक्त स्त्रीको द्वेषके कारण छोड़ देते हैं, वे वैतरणीमें पड़ते हैं॥ १५॥ जो हजारों गुणोंके होनेपर भी सत्पुरुषोंमें दोषका आरोपण करते हैं और उनकी अवहेलना करते हैं, वे वैतरणीमें पड़ते हैं॥ १६॥

ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः। आहूय नास्ति यो ब्रूयात्तयोर्वासश्च सन्ततम्॥ १७॥
स्वयं दत्ताऽपहर्ता च दानं दत्वाऽनुतापकः। परवृत्तिहरश्चैव दाने दत्ते निवारकः॥ १८॥
यज्ञविध्वंसकश्चैव कथाभङ्गकरश्च यः। क्षेत्रसीमाहरश्चैव यश्च गोचरकर्षकः॥ १९॥
ब्राह्मणो रसविक्रेता यदि स्याद् वृषलीपतिः। वेदोक्तयज्ञादन्यत्र स्वात्मार्थं पशुमारकः॥ २०॥
ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टो मांसभोक्ता च मद्यपः। उच्छृङ्खलस्वभावो यः शास्त्राध्ययनवर्जितः॥ २१॥
वेदाक्षरं पठेच्छूद्रः कापिलं यः पयः पिबेत्। धारयेद् ब्रह्मसूत्रं च भवेद्वा ब्राह्मणीपतिः॥ २२॥
राजभार्याऽभिलाषी च परदारापहारकः। कन्यायां कामुकश्चैव सतीनां दूषकश्च यः॥ २३॥

वचन दे करके जो ब्राह्मणको यथार्थरूपमें दान नहीं देता है और बुला करके जो व्यक्ति 'नहीं है' ऐसा कहता है, वे दोनों सदा वैतरणीमें निवास करते हैं॥ १७॥ स्वयं दी हुई वस्तुका जो अपहरण कर लेता है, दान देकर पश्चात्ताप करता है, जो दूसरेकी आजीविकाका हरण करता है, दान देनेसे रोकता है, यज्ञका विध्वंस करता है, कथा-भङ्ग करता है, क्षेत्रकी सीमाका हरण कर लेता है और जो गोचरभूमिको जोतता है, वह वैतरणीमें पड़ता है। ब्राह्मण होकर रसविक्रय करनेवाला, वृषलीका पति (शूद्र स्त्रीका ब्राह्मणपति), वेदप्रतिपादित यज्ञके अतिरिक्त अपने लिये पशुओंकी हत्या करनेवाला, ब्रह्मकर्मसे च्युत, मांसभोजी, मद्य पीनेवाला, उच्छृङ्खल स्वभाववाला, शास्त्रके अध्ययनसे रहित (ब्राह्मण), वेद पढ़नेवाला शूद्र, कपिलाका दूध पीनेवाला शूद्र, यज्ञोपवीत धारण

करनेवाला शूद्र, ब्राह्मणीका पति बननेवाला शूद्र, राजमहिषीके साथ व्यभिचार करनेवाला, परायी स्त्रीका अपहरण करनेवाला, कन्याके साथ कामाचारकी इच्छा रखनेवाला तथा जो सतीत्व नष्ट करनेवाला है— ॥ १८—२३ ॥

एते चाऽन्ये च बहवो निषिद्धाचरणोत्सुकाः। विहितत्यागिनो मूढा वैतरण्यां पतन्ति ते॥ २४॥
सर्वं मार्गमतिक्रम्य यान्ति पापा यमालये। पुनर्यमाज्ञयाऽऽगत्य दूतास्तस्यां क्षिपन्ति तान्॥ २५॥
या वै धुरन्धरा सर्वधौरेयाणां खगाधिप। अतस्तस्यां प्रक्षिपन्ति वैतरण्यां च पापिनः॥ २६॥

ये सभी तथा इसी प्रकार और भी बहुत निषिद्धाचरण करनेमें उत्सुक तथा शास्त्रविहित कर्मोंको त्यागनेवाले वे मूढजन वैतरणीमें गिरते हैं॥ २४॥ सभी मार्गोंको पार करके पापी यमके भवनमें पहुँचते हैं और पुनः यमकी आज्ञासे आकर दूत लोग उन्हें वैतरणीमें फेंक देते हैं॥ २५॥ हे खगराज! यह वैतरणी नदी (कष्ट प्रदान करनेवाले) सभी प्रमुख नरकोंमें भी सर्वाधिक कष्टप्रद है। इसलिये यमदूत पापियोंको उस वैतरणीमें फेंकते हैं॥ २६॥

कृष्णा गौर्यदि नो दत्ता नौर्ध्वदेहक्रियाकृताः। तस्यां भुक्त्वा महद् दुःखं यान्ति वृक्षं तटोद्भवम्॥ २७॥
कूटसाक्ष्यप्रदातारः कूटधर्मपरायणाः। छलेनार्जनसंसक्ताश्चौर्यवृत्त्या च जीविनः॥ २८॥
छेदयन्त्यतिवृक्षांश्च वनारामविभञ्जकाः। व्रतं तीर्थं परित्यज्य विधवाशीलनाशकाः॥ २९॥

जिसने अपने जीवनकालमें कृष्णा (काली) गौका दान नहीं किया अथवा मृत्युके पश्चात् जिसके उद्देश्यसे बान्धवोंद्वारा कृष्णा गौ नहीं दी गयी तथा जिसने अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं कर ली या जिसके उद्देश्यसे

और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं की गयी हो, वे वैतरणीमें महान् दुःख भोग करके वैतरणी तटस्थित शाल्मली-वृक्षमें जाते हैं॥ २७॥ जो झूठी गवाही देनेवाले, धर्मपालनका ढोंग करनेवाले, छलसे धनका अर्जन करनेवाले, चोरीद्वारा आजीविका चलानेवाले, अत्यधिक वृक्षोंको काटनेवाले, वन और वाटिकाको नष्ट करनेवाले, व्रत और तीर्थका परित्याग करनेवाले, विधवाके शीलको नष्ट करनेवाले हैं॥ २८-२९॥

भर्तारं दूषयेन्नारी परं मनसि धारयेत्। इत्याद्याः शाल्मलीवृक्षे भुञ्जन्ते बहुताडनम्॥ ३०॥
ताडनात् पतितान् दूताः क्षिपन्ति नरकेषु तान्। पतन्ति तेषु ये पापास्तानहं कथयामि ते॥ ३१॥
नास्तिका भिन्नमर्यादाः कदर्या विषयात्मकाः। दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै नरकगामिनः॥ ३२॥
कूपानां च तडागानां वापीनां देवसद्मनाम्। प्रजागृहाणां भेत्तारस्ते वै नरकगामिनः॥ ३३॥

जो स्त्री अपने पतिको दोष लगाकर परपुरुषमें आसक्त होनेवाली है—ये सभी और इस प्रकारके अन्य पापी भी शाल्मली-वृक्षद्वारा बहुत ताडना प्राप्त करते हैं॥ ३०॥ पीटनेसे नीचे गिरे हुए उन पापियोंको यमदूत नरकोंमें फेंकते हैं। उन नरकोंमें जो पापी गिरते हैं, उनके विषयमें मैं तुम्हें बतलाता हूँ—॥ ३१॥ (वेदकी निन्दा करनेवाले) नास्तिक, मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले, कंजूस, विषयोंमें डूबे रहनेवाले, दम्भी तथा कृतघ्न मनुष्य निश्चय ही नरकोंमें गिरते हैं॥ ३२॥ जो कुँआ, तालाब, बावली, देवालय तथा सार्वजनिक स्थान (धर्मशाला आदि)-को नष्ट

* इन पाँचों देवोंको शास्त्रमें परब्रह्म माना गया है। इसीलिये पञ्चदेवोपासनाका विधान है।

करते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं॥ ३३॥

विसृज्याश्नन्ति ये दाराञ्छिशून् भृत्यांस्तथा गुरून्। उत्सृज्य पितृदेवेज्यां ते वै नरकगामिनः॥ ३४॥
शंकुभिः सेतुभिः काष्ठैः पाषाणैः कण्टकैस्तथा। ये मार्गमुपरुन्धन्ति ते वै नरकगामिनः॥ ३५॥

स्त्रियों, छोटे बच्चों, नौकरों तथा श्रेष्ठजनोंको छोड़कर एवं पितरों और देवताओंकी पूजाका परित्याग करके जो भोजन करते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ३४॥ जो मार्गको कीलोंसे, पुलोंसे, लकड़ियोंसे तथा पत्थरों एवं काँटोंसे रोकते हैं, निश्चय ही वे नरकगामी होते हैं॥ ३५॥

शिवं शिवां हरिं सूर्यं गणेशं सद्गुरुं बुधम्। न पूजयन्ति ये मन्दास्ते वै नरकगामिनः॥ ३६॥
आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छेदधोगतिम्। प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते॥ ३७॥
न नमस्कारयोग्यो हि स कदापि द्विजोऽधमः। तं पूजयन्ति ये मूढास्ते वै नरकगामिनः॥ ३८॥
ब्राह्मणानां च कलहं गोयुद्धं कलहप्रियाः। न वर्जन्त्यनुमोदन्ते ते वै नरकगामिनः॥ ३९॥
अनन्यशरणस्त्रीणां ऋतुकालव्यतिक्रमम्। ये प्रकुर्वन्ति विद्वेषात्ते वै नरकगामिनः॥ ४०॥
येऽपि गच्छन्ति कामान्धा नरा नारीं रजस्वलाम्। पर्वस्वप्सु दिवा श्राद्धे ते वै नरकगामिनः॥ ४१॥

जो मन्द पुरुष भगवान् शिव, भगवती शक्ति, नारायण, सूर्य, गणेश,* सद्गुरु और विद्वान्—इनकी पूजा नहीं करते, वे नरकमें जाते हैं॥ ३६॥ दासीको अपनी शय्यापर आरोपित करनेसे ब्राह्मण अधोगतिको प्राप्त होता है

और शूद्रामें संतान उत्पन्न करनेसे वह ब्राह्मणत्वसे ही च्युत हो जाता है। वह ब्राह्मणाधम कभी भी नमस्कारके योग्य नहीं होता। जो मूर्ख ऐसे ब्राह्मणकी पूजा करते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ३७-३८॥ दूसरोंके कलहसे प्रसन्न होनेवाले जो मनुष्य ब्राह्मणोंके कलह तथा गौओंकी लड़ाईको नहीं रुकवाते हैं (प्रत्युत ऐसा देखकर प्रसन्न होते हैं) अथवा उसका समर्थन करते हैं, बढ़ावा देते हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं॥ ३९॥ जिसका कोई दूसरा शरण नहीं है, ऐसी पतिपरायणा स्त्रीके ऋतुकालकी द्वेषवश उपेक्षा करनेवाले निश्चित ही नरकगामी होते हैं॥ ४०॥ जो कामान्ध पुरुष रजस्वला स्त्रीसे गमन करते हैं अथवा पर्वके दिनों (अमावास्या, पूर्णिमा आदि)-में, जलमें, दिनमें तथा श्राद्धके दिन कामुक होकर स्त्रीसंग करते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४१॥

ये शारीरं मलं वह्नौ प्रक्षिपन्ति जलेऽपि च। आरामे पथि गोष्ठे वा ते वै नरकगामिनः॥ ४२॥
शस्त्राणां ये च कर्तारः शराणां धनुषां तथा। विक्रेतारश्च ये तेषां ते वै नरकगामिनः॥ ४३॥
चर्मविक्रयिणो वैश्याः केशविक्रेयका: स्त्रियः। विषविक्रयिणः सर्वे ते वै नरकगामिनः॥ ४४॥

जो अपने शरीरके मलको आग, जल, उपवन, मार्ग अथवा गोशालामें फेंकते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं॥ ४२॥ जो हथियार बनानेवाले, बाण और धनुषका निर्माण करनेवाले तथा इनका विक्रय करनेवाले हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४३॥ चमड़ा बेचनेवाले वैश्य, केश (योनि)-का विक्रय करनेवाली स्त्रियाँ तथा विषका विक्रय करनेवाले—ये सभी नरकमें जाते हैं॥ ४४॥

अनाथं नाऽनुकम्पन्ति ये सतां द्वेषकारकाः। विनाऽपराधं दण्डन्ति ते वै नरकगामिनः॥ ४५॥
आशया समनुप्राप्तान् ब्राह्मणानर्थिनो गृहे। न भोजयन्ति पाकेऽपि ते वै नरकगामिनः॥ ४६॥
सर्वभूतेष्वविश्वस्तास्तथा तेषु विनिर्दयाः। सर्वभूतेषु जिह्मा ये ते वै नरकगामिनः॥ ४७॥
नियमान्समुपादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः। विग्लापयन्ति तान् भूयस्ते वै नरकगामिनः॥ ४८॥

जो अनाथके ऊपर कृपा नहीं करते हैं, सत्पुरुषोंसे द्वेष करते हैं और निरपराधको दण्ड देते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४५॥ आशा लगाकर घरपर आये हुए ब्राह्मणों और याचकोंको पाकसम्पन्न (भोजनके बने) रहनेपर भी जो भोजन नहीं कराते, वे निश्चय ही नरक प्राप्त करनेवाले होते हैं॥ ४६॥ जो सभी प्राणियोंमें विश्वास नहीं करते और उनपर दया नहीं करते तथा जो सभी प्राणियोंके प्रति कुटिलताका व्यवहार करते हैं, वे निश्चय ही नरकगामी होते हैं॥ ४७॥ जो अजितेन्द्रिय पुरुष नियमोंको स्वीकार करके बादमें उन्हें त्याग देते हैं, वे नरकगामी होते हैं॥ ४८॥

अध्यात्मविद्यादातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम्। तथा पुराणवक्तारं ते वै नरकगामिनः॥ ४९॥
मित्रद्रोहकरा ये च प्रीतिच्छेदकराश्च ये। आशाच्छेदकरा ये च ते वै नरकगामिनः॥ ५०॥
विवाहं देवयात्रां च तीर्थसार्थान्विलुम्पति। स वसेन्नरके घोरे तस्मान्नावर्तनं पुनः॥ ५१॥

जो अध्यात्मविद्या प्रदान करनेवाले गुरुको नहीं मानते और जो पुराणवक्ताको नहीं मानते, वे नरकमें जाते हैं॥ ४९॥ जो व्यक्ति मित्रसे द्रोह करते हैं, जो व्यक्तियोंकी आपसी प्रीतिका भेदन करते हैं तथा जो दूसरेकी

आशाको नष्ट करते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं॥ ५०॥ विवाहको भङ्ग करनेवाला, देवयात्रामें विघ्न करनेवाला तथा तीर्थयात्रियोंको लूटनेवाला घोर नरकमें वास करता है और वहाँसे उसका पुनरावर्तन नहीं होता॥ ५१॥

अग्निं दद्यान्महापापी गृहे ग्रामे तथा वने। स नीतो यमदूतैश्च वह्निकुण्डेषु पच्यते॥ ५२॥
अग्निना दग्धगात्रोऽसौ यदा छायां प्रयाचते। नीयते च तदा दूतैरसिपत्रवनान्तरे॥ ५३॥
खड्गतीक्ष्णैश्च तत्पत्रैर्गात्रच्छेदो यदा भवेत्। तदोचुः शीतलच्छाये सुखनिद्रां कुरुष्व भो॥ ५४॥

जो महापापी घर, गाँव तथा जंगलमें आग लगाता है, यमदूत उसे ले जाकर अग्निकुण्डोंमें पकाते हैं॥ ५२॥ इस अग्निसे जले हुए अङ्गवाला वह पापी जब छायाकी याचना करता है तो यमदूत उसे असिपत्र नामक वनमें ले जाते हैं॥ ५३॥ जहाँ तलवारके समान तीक्ष्ण पत्तोंसे उसके अङ्ग जब कट जाते हैं, तब यमदूत उससे कहते हैं—रे पापी! शीतल छायामें सुखकी नींद सो॥ ५४॥

पानीयं पातुमिच्छन्वै तृषार्तो यदि याचते। पानार्थं तैलमत्युष्णं तदा दूतैः प्रदीयते॥ ५५॥
पीयतां भुज्यतां पानमन्नमूचुस्तदेति ते। पीतमात्रेण तेनैव दग्धान्त्रा निपतन्ति ते॥ ५६॥
कथञ्चित्पुनरुत्थाय प्रलपन्ति सुदीनवत्। विवशा उच्छ्वसन्तश्च ते वक्तुमपि नाशकन्॥ ५७॥

जब वह प्याससे व्याकुल होकर जल पीनेकी इच्छासे पानी माँगता है तो दूतोंके द्वारा उसे खौलता हुआ तेल पीनेके लिये दिया जाता है॥ ५५॥ 'पानी पीयो और अन्न खाओ'—ऐसा उस समय उनके द्वारा कहा जाता है।

उस अति उष्ण तेलके पीते ही उनकी आँतें जल जाती हैं और वे गिर पड़ते हैं॥ ५६॥ किसी प्रकार पुनः उठकर अत्यन्त दीनकी भाँति प्रलाप करते हैं। विवश होकर ऊर्ध्व श्वास लेते हुए वे कुछ कहनेमें भी समर्थ नहीं होते॥ ५७॥

इत्येवं बहुशस्ताक्ष्र्य यातनाः पापिनां स्मृताः। किमेतैर्विस्तरात्प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः॥ ५८॥
एवं वै क्लिश्यमानास्ते नरा नार्यः सहस्रशः। पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ५९॥
तस्याक्षयं फलं भुक्त्वा तत्रैवोत्पद्यते पुनः। यमाज्ञया महीं प्राप्य भवन्ति स्थावरादयः॥ ६०॥

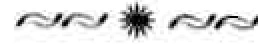
हे ताक्ष्र्य! इस प्रकारकी पापियोंकी बहुत-सी यातनाएँ बतायी गयी हैं। विस्तारपूर्वक इन्हें कहनेकी क्या आवश्यकता? इनके सम्बन्धमें सभी शास्त्रोंमें कहा गया है॥ ५८॥ इस प्रकार हजारों नर-नारी नारकीय यातनाको भोगते हुए प्रलयपर्यन्त घोर नरकोंमें पकते रहते हैं॥ ५९॥ उस पापका अक्षय फल भोगकर पुनः वहीं पैदा होते हैं और यमकी आज्ञासे पृथ्वीपर आकर स्थावर आदि योनियोंको प्राप्त करते हैं॥ ६०॥

वृक्षगुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणानि च। स्थावरा इति विख्याता महामोहतमावृताः॥ ६१॥
कीटाश्च पशवश्चैव पक्षिणश्च जलेचराः। चतुरशीतिलक्षेषु कथिता देवयोनयः॥ ६२॥

वृक्ष, गुल्म, लता, वल्ली, गिरि (पर्वत) तथा तृण आदि ये स्थावर योनियाँ कही गयी हैं; ये अत्यन्त मोहसे आवृत हैं॥ ६१॥ कीट, पशु-पक्षी, जलचर तथा देव—इन योनियोंको मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ कही गयी हैं॥ ६२॥

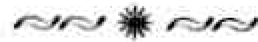
एताः सर्वाः परिभ्रम्य ततो यान्ति मनुष्यताम्।
मानुषेऽपि श्वपाकेषु जायन्ते नरकागताः। तत्रापि पापचिह्नैस्ते भवन्ति बहुदुःखिताः ॥ ६३ ॥
गलत्कुष्ठाश्च जन्मान्धा महारोगसमाकुलाः। भवन्त्येवं नरा नार्यः पापचिह्नोपलक्षिताः ॥ ६४ ॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे नरकप्रदपापचिह्ननिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



इन सभी योनियोंमें घूमते हुए जीव मनुष्ययोनि प्राप्त करते हैं और मनुष्ययोनिमें भी नरकसे आये व्यक्ति चाण्डालके घरमें जन्म लेते हैं तथा उसमें भी (कुष्ठ आदि) पापचिह्नोंसे वे बहुत दुःखी रहते हैं। किसीको गलित कुष्ठ हो जाता है, कोई जन्मसे अन्धे होते हैं और कोई महारोगसे व्यथित होते हैं। इस प्रकार पुरुष और स्त्रीमें पापके चिह्न दिखायी पड़ते हैं ॥ ६३-६४ ॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'नरकप्रदपापचिह्ननिरूपण' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥



पाँचवाँ अध्याय

कर्मविपाकवश मनुष्यको अनेक योनियों और विविध रोगोंकी प्राप्ति

गरुड उवाच

येन येन च पापेन यद्यच्चिह्नं प्रजायते। यां यां योनिं च गच्छन्ति तन्मे कथय केशव॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे केशव! जिस-जिस पापसे जो-जो चिह्न प्राप्त होते हैं और जिन-जिन योनियोंमें जीव जाते हैं, वह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

यैः पापैर्यान्ति यां योनिं पापिनो नरकागताः। येन पापेन यच्चिह्नं जायते मम तच्छृणु॥ २ ॥
ब्रह्महा क्षयरोगी स्याद् गोघ्नः स्यात्कुब्जको जडः। कन्याघाती भवेत्कुष्ठी त्रयश्चाण्डालयोनिषु॥ ३ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—नरकसे आये हुए पापी जिन पापोंके द्वारा जिस योनिमें जाते हैं और जिस पापसे जो चिह्न होता है, वह मुझसे सुनो॥ २॥ ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होता है, गायकी हत्या करनेवाला मूर्ख और कुबड़ा होता है। कन्याकी हत्या करनेवाला कोढ़ी होता है और ये तीनों पापी चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं॥ ३॥

स्त्रीघाती गर्भपाती च पुलिन्दो रोगवान् भवेत् । अगम्यागमनात्षण्ढो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ ४ ॥
मांसभोक्ताऽतिरक्ताङ्गः श्यावदन्तस्तु मद्यपः । अभक्ष्यभक्षको लौल्याद् ब्राह्मणः स्यान्महोदरः ॥ ५ ॥
अदत्त्वा मिष्टमश्नाति स भवेद्गलगण्डवान् । श्राद्धेऽन्नमशुचिं दत्त्वा श्वित्रकुष्ठी प्रजायते ॥ ६ ॥

स्त्रीकी हत्या करनेवाला तथा गर्भपात करानेवाला पुलिन्द (भिल्ल) होकर रोगी होता है। परस्त्रीगमन करनेवाला नपुंसक और गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला चर्मरोगी होता है ॥ ४ ॥ मांसका भोजन करनेवालेका अङ्ग अत्यन्त लाल होता है, मद्य पीनेवालेके दाँत काले (कपिशवर्णके) होते हैं, लालचवश अभक्ष्यभक्षण करनेवाले ब्राह्मणको महोदररोग होता है ॥ ५ ॥ जो दूसरेको दिये बिना मिष्टान्न खाता है, उसे गलेमें गण्डमाला-रोग होता है, श्राद्धमें अपवित्र अन्न देनेवाला श्वेतकुष्ठी होता है ॥ ६ ॥

गुरोर्गर्वेणावमानादपस्मारी भवेन्नरः । निन्दको वेदशास्त्राणां पाण्डुरोगी भवेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥
कूटसाक्षी भवेन्मूकः काणः स्यात्पंक्तिभेदकः । अनोष्ठः स्याद्विवाहघ्नो जन्मान्धः पुस्तकं हरेत् ॥ ८ ॥
गोब्राह्मणपदाघातात्खञ्जः पङ्गुश्च जायते । गद्गदोऽनृतवादी स्यात्तच्छ्रोता बधिरो भवेत् ॥ ९ ॥

गर्वसे गुरुका अपमान करनेवाला मनुष्य मिरगीका रोगी होता है। वेदशास्त्रकी निन्दा करनेवाला निश्चित ही पाण्डुरोगी होता है ॥ ७ ॥ झूठी गवाही देनेवाला गूँगा, पंक्तिभेद[1] करनेवाला काना, विवाहमें विघ्न करनेवाला व्यक्ति

१. जनसमूहमें किसी भी व्यक्ति-विशेषके प्रति किया जानेवाला पक्षपात पंक्तिभेद है।





किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

ओष्ठरहित और पुस्तक चुरानेवाला जन्मान्ध होता है ॥ ८ ॥ गाय और ब्राह्मणको पैरसे मारनेवाला लूला-लँगड़ा होता है, झूठ बोलनेवाला हकलाकर बोलता है तथा झूठी बात सुननेवाला बहरा होता है ॥ ९ ॥

गरदः स्याज्जडोन्मत्तः खल्वाटोऽग्निप्रदायकः । दुर्भगः पलविक्रेता रोगवान् परमांसभुक् ॥ १० ॥
हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः । कुनखी स्वर्णहर्ता स्याद्धातुमात्रहरोऽधनः ॥ ११ ॥
अन्नहर्ता भवेदाखुः शलभो धान्यहारकः । चातको जलहर्ता स्याद्विषहर्ता च वृश्चिकः ॥ १२ ॥
शाकं पत्रं शिखी हृत्वा गन्धांश्छुच्छुन्दरी शुभान् । मधुदंशः पलं गृध्रो लवणं च पिपीलिका ॥ १३ ॥

विष देनेवाला मूर्ख और उन्मत्त (पागल) तथा आग लगानेवाला खल्वाट (गंजा) होता है। पल (मांस) बेचनेवाला अभागा और दूसरेका मांस खानेवाला रोगी होता है ॥ १० ॥ रत्नोंका अपहरण करनेवाला हीनजातिमें उत्पन्न होता है, सोना चुरानेवाला नखरोगी और अन्य धातुओंको चुरानेवाला निर्धन होता है ॥ ११ ॥ अन्न चुरानेवाला चूहा और धान चुरानेवाला शलभ (टिड्डी) होता है। जलकी चोरी करनेवाला चातक और विषका व्यवहार करनेवाला वृश्चिक (बिच्छू) होता है ॥ १२ ॥ शाक-पात चुरानेवाला मयूर होता है, शुभ गन्धवाली वस्तुओंको चुरानेवाला छुछुन्दरी होता है, मधु चुरानेवाला डाँस, मांस चुरानेवाला गीध और नमक चुरानेवाला चींटी होता है ॥ १३ ॥

ताम्बूलफलपुष्पादिहर्ता स्याद्वानरो वने । उपानत्तृणकार्पासहर्ता स्यान्मेषयोनिषु ॥ १४ ॥
यश्च रौद्रोपजीवी च मार्गे सार्थान्विलुम्पति । मृगयाव्यसनीयस्तु छागः स्याद्वधिके गृहे ॥ १५ ॥





किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

ताम्बूल, फल तथा पुष्प आदिकी चोरी करनेवाला वनमें बंदर होता है। जूता, घास तथा कपासको चुरानेवाला भेड़योनिमें उत्पन्न होता है॥ १४॥ जो रौद्रकर्मों (क्रूरकर्मों)-से आजीविका चलानेवाला है, मार्गमें यात्रियोंको लूटता है और जो आखेटका व्यसन रखनेवाला है, वह कसाईके घरका बकरा होता है॥ १५॥

यो मृतो विषपानेन कृष्णसर्पो भवेद् गिरौ। निरंकुशस्वभावः स्यात् कुञ्जरो निर्जने वने॥ १६॥
वैश्वदेवमकर्तारः सर्वभक्षाश्च ये द्विजाः। अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर्निर्जने वने॥ १७॥
गायत्रीं न स्मरेद्यस्तु यो न सन्ध्यामुपासते। अन्तर्दुष्टो बहिः साधुः स भवेद् ब्राह्मणो बकः॥ १८॥

विष पीकर मरनेवाला पर्वतपर काला नाग होता है। जिसका स्वभाव अमर्यादित है, वह निर्जन वनमें हाथी होता है॥ १६॥ बलिवैश्वदेव न करनेवाले तथा सब कुछ खा लेनेवाले द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) और बिना परीक्षण किये भोजन कर लेनेवाले व्यक्ति निर्जन वनमें व्याघ्र होते हैं॥ १७॥ जो ब्राह्मण गायत्रीका स्मरण नहीं करता और जो संध्योपासन नहीं करता, जिसका अन्तःस्वरूप दूषित तथा बाह्य स्वरूप साधुकी तरह प्रतीत होता है, वह ब्राह्मण बगुला होता है॥ १८॥

अयाज्ययाजको विप्रः स भवेद् ग्रामसूकरः। खरो वै बहुयाजित्वात्काकोऽनिर्मन्त्रभोजनात्॥ १९॥
पात्रे विद्यामदाता च बलीवर्दो भवेद् द्विजः। गुरुसेवामकर्ता च शिष्यः स्याद् गोखरः पशुः॥ २०॥
गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः। अरण्ये निर्जले देशे जायते ब्रह्मराक्षसः॥ २१॥

जिनको यज्ञ नहीं करना चाहिये, उनके यहाँ यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण गाँवका सूअर होता है, क्षमतासे अधिक यज्ञ करानेवाला गर्दभ तथा बिना आमन्त्रणके भोजन करनेवाला कौआ होता है॥ १९॥ जो सत्पात्र शिष्यको विद्या नहीं प्रदान करता, वह ब्राह्मण बैल होता है। गुरुकी सेवा न करनेवाला शिष्य बैल और गधा होता है॥ २०॥ गुरुके प्रति (अपमानके तात्पर्यसे) हुं या तुं शब्दोंका उच्चारण करनेवाला और वाद-विवादमें ब्राह्मणको पराजित करनेवाला जलविहीन अरण्यमें ब्रह्मराक्षस होता है॥ २१॥

प्रतिश्रुतं द्विजे दानमदत्त्वा जम्बुको भवेत्। सतामसत्कारकरः फेत्कारोऽग्निमुखो भवेत्॥ २२॥
मित्रध्रुग्गिरिगृध्रः स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्। वर्णाश्रमपरीवादात्कपोतो जायते वने॥ २३॥
आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः। यो द्वेषात् स्त्रीपरित्यागी चक्रवाकश्चिरं भवेत्॥ २४॥

प्रतिज्ञा करके द्विजको दान न देनेवाला सियार होता है। सत्पुरुषोंका अनादर करनेवाला व्यक्ति अग्निमुख सियार होता है॥ २२॥ मित्रसे द्रोह करनेवाला पर्वतका गीध होता है और क्रयमें धोखा देनेवाला उल्लू होता है। वर्णाश्रमकी निन्दा करनेवाला वनमें कपोत होता है॥ २३॥ आशाको तोड़नेवाला और स्नेहको नष्ट करनेवाला, द्वेषवश स्त्रीका परित्याग कर देनेवाला बहुत कालतक चक्रवाक (चकोर) होता है॥ २४॥

मातृपितृगुरुद्वेषी भगिनीभ्रातृवैरकृत्। गर्भे योनौ विनष्टः स्याद्यावद्योनिसहस्रशः॥ २५॥
श्वश्रोऽपशब्ददा नारी नित्यं कलहकारिणी। सा जलौका च यूका स्याद्भर्तारं भर्त्सते च या॥ २६॥

स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनी। वल्गुनी गृहगोधा स्याद् द्विमुखी वाऽथ सर्पिणी॥ २७॥

माता-पिता, गुरुसे द्वेष करनेवाला तथा बहन और भाईसे शत्रुता करनेवाला हजारों जन्मोंतक गर्भमें या योनिमें नष्ट होता रहता है॥ २५॥ सास-श्वशुरको अपशब्द कहनेवाली स्त्री तथा नित्य कलह करनेवाली स्त्री जलौका (जलजोंक) होती है और पतिकी भर्त्सना करनेवाली नारी जूँ होती है॥ २६॥ अपने पतिका परित्याग करके परपुरुषका सेवन करनेवाली स्त्री वल्गुनी (चमगीदड़ी), छिपकली अथवा दो मुँहवाली सर्पिणी होती है॥ २७॥

यः स्वगोत्रोपघाती च स्वगोत्रस्त्रीनिषेवणात्। तरक्षः शल्लको भूत्वा ऋक्षयोनिषु जायते॥ २८॥
तापसीगमनात् कामी भवेन्मरुपिशाचकः। अप्राप्तयौवनासंगाद् भवेदजगरो वने॥ २९॥
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः। राज्ञीं गत्वा भवेद्दुष्ट्रो मित्रपत्नीं च गर्दभः॥ ३०॥

सगोत्रकी स्त्रीके साथ सम्बन्ध बनाकर अपने गोत्रको विनष्ट करनेवाला तरक्ष (लकड़बग्घा) और शल्लक (शाही) होकर रीछ-योनिमें जन्म लेता है॥ २८॥ तापसीके साथ व्यभिचार करनेवाला कामी पुरुष मरुप्रदेशमें पिशाच होता है और अप्राप्तयौवनासे सम्बन्ध करनेवाला वनमें अजगर होता है॥ २९॥ गुरुपत्नीके साथ गमनकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य कृकलास (गिरगिट) होता है। राजपत्नीके साथ गमन करनेवाला ऊँट तथा मित्रकी पत्नीके साथ गमन करनेवाला गधा होता है॥ ३०॥

गुदगो विड्वराहः स्याद् वृषः स्याद् वृषलीपतिः। महाकामी भवेद् यस्तु स्यादश्वः कामलम्पटः॥ ३१॥
मृतस्यैकादशाहं तु भुञ्जानः श्वा विजायते। लभेद्देवलको विप्रो योनिं कुक्कुटसंज्ञकाम्॥ ३२॥
द्रव्यार्थं देवतापूजां यः करोति द्विजाधमः। स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः॥ ३३॥

गुदा-गमन करनेवाला विष्ठाभोगी सूअर तथा शूद्रागामी बैल होता है। जो महाकामी होता है, वह कामलम्पट घोड़ा होता है॥ ३१॥ किसीके मरणाशौचमें एकादशाहतक भोजन करनेवाला कुत्ता होता है। देवद्रव्यभोक्ता देवलक ब्राह्मण मुर्गेकी योनि प्राप्त करता है॥ ३२॥ जो ब्राह्मणाधम द्रव्यार्जनके लिये देवताकी पूजा करता है, वह देवलक कहलाता है। वह देवकार्य तथा पितृकार्यके लिये निन्दनीय है॥ ३३॥

महापातकजान् घोरान्नरकान् प्राप्य दारुणान्। कर्मक्षये प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह॥ ३४॥
खरोष्ट्रमहिषीणां हि ब्रह्महा योनिमृच्छति। वृकश्वानशृगालानां सुरापा यान्ति योनिषु॥ ३५॥
कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णस्तेयी समाप्नुयात्। तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः॥ ३६॥

महापातकसे प्राप्त अत्यन्त घोर एवं दारुण नरकोंका भोग प्राप्त करके महापातकी (व्यक्ति) कर्मके क्षय होनेपर पुनः इस (मर्त्य) लोकमें जन्म लेते हैं॥ ३४॥ ब्रह्महत्यारा गधा, ऊँट और महिषीकी योनि प्राप्त करता है तथा सुरापान करनेवाले भेड़िया, कुत्ता एवं सियारकी योनिमें जाते हैं॥ ३५॥ स्वर्ण चुरानेवाला कृमि, कीट तथा पतंगकी योनि प्राप्त करता है। गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला क्रमशः तृण, गुल्म तथा

लता होता है ॥ ३६ ॥

परस्य योषितं हृत्वा न्यासापहरणेन च । ब्रह्मस्वहरणाच्चैव जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । बलात्कारेण चौर्येण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥ ३८ ॥

परस्त्रीका हरण करनेवाला, धरोहरका हरण करनेवाला तथा ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणका धन कपट-स्नेहसे खानेवाला सात पीढ़ियोंतक अपने कुलका विनाश करता है और बलात्कार तथा चोरीके द्वारा खानेपर जबतक चन्द्रमा और तारकोंकी स्थिति होती है तबतक वह अपने कुलको जलाता है ॥ ३८ ॥

लौहचूर्णाश्मचूर्णे च विषं च जरयेन्नरः । ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ३९ ॥
ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च । युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा ॥ ४० ॥
देवद्रव्योपभोगेन ब्रह्मस्वहरणेन च । कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ४१ ॥

लोहे और पत्थरके चूर्ण तथा विषको व्यक्ति पचा सकता है, पर तीनों लोकोंमें ऐसा कौन व्यक्ति है, जो ब्रह्मस्व (ब्राह्मणके धन)-को पचा सकता है ? ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणके धनसे पोषित की गयी सेना तथा वाहन युद्धकालमें बालूसे बने सेतु—बाँधके समान नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥ देवद्रव्यका उपभोग करनेसे अथवा ब्रह्मस्वका हरण करनेसे या ब्राह्मणका अतिक्रमण करनेसे कुल पतित हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम्। अन्येभ्यो दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः॥ ४२॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥ ४३॥
अतिक्रमे कृते तार्क्ष्य भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्। जन्मान्धः सन्दरिद्रः स्यान्न दाता किंतु याचकः॥ ४४॥

अपने आश्रित वेद-शास्त्रपरायण ब्राह्मणको छोड़कर अन्य ब्राह्मणको दान देना (ब्राह्मणका) अतिक्रमण करना कहलाता है॥ ४२॥ वेदवेदाङ्गके ज्ञानसे रहित ब्राह्मणको छोड़ना अतिक्रमण नहीं कहलाता है; क्योंकि जलती हुई आगको छोड़कर भस्ममें आहुति नहीं दी जाती॥ ४३॥ हे तार्क्ष्य! ब्राह्मणका अतिक्रमण करनेवाला व्यक्ति नरकोंको भोगकर क्रमशः जन्मान्ध एवं दरिद्र होता है, वह कभी दाता नहीं बन सकता अपितु याचक ही रहता है॥ ४४॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ ४५॥
स्वयमेव च यो दत्त्वा स्वयमेवापकर्षति। स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ४६॥
दत्त्वा वृत्तिं भूमिदानं यत्नतः परिपालयेत्। न रक्षति हरेद्यस्तु स पङ्गुः श्वाऽभिजायते॥ ४७॥

अपने द्वारा दी हुई अथवा दूसरे द्वारा दी गयी पृथ्वीको जो छीन लेता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है॥ ४५॥ जो स्वयं (कुछ) देकर पुनः स्वयं ले भी लेता है, वह पापी एक कल्पतक नरकमें रहता है॥ ४६॥ जीविका अथवा भूमिका दान देकर यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये; जो रक्षा नहीं करता प्रत्युत

उसे हर लेता है, वह पंगु (लँगड़ा) कुत्ता होता है॥ ४७॥

विप्रस्य वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलं भवेत्। विप्रस्य वृत्तिहरणान्मर्कटः श्वा कपिर्भवेत्॥ ४८॥
एवमादीनि चिह्नानि योनयश्च खगेश्वर। स्वकर्मविहिता लोके दृश्यन्तेऽत्र शरीरिणाम्॥ ४९॥
एवं दुष्कर्मकर्तारो भुक्त्वा निरययातनाम्। जायन्ते पापशेषेण प्रोक्तास्वेतासु योनिषु॥ ५०॥

ब्राह्मणको आजीविका देनेवाला व्यक्ति एक लाख गोदानका फल प्राप्त करता है और ब्राह्मणकी वृत्तिका हरण करनेवाला बन्दर, कुत्ता तथा लंगूर होता है॥ ४८॥ हे खगेश्वर! प्राणियोंको अपने कर्मके अनुसार लोकमें पूर्वोक्त योनियाँ तथा शरीरपर चिह्न देखनेको मिलते हैं॥ ४९॥ इस प्रकार दुष्कर्म (पाप) करनेवाले जीव नारकीय यातनाओंको भोगकर अवशिष्ट पापोंको भोगनेके लिये इन पूर्वोक्त योनियोंमें जाते हैं॥ ५०॥

ततो जन्मसहस्रेषु प्राप्य तिर्यक्शरीरताम्। दुःखानि भारवहनोद्भवादीनि लभन्ति ते॥ ५१॥
पक्षिदुःखं ततो भुक्त्वा वृष्टिशीतातपोद्भवम्। मानुषं लभते पश्चात् समीभूते शुभाशुभे॥ ५२॥
स्त्रीपुंसोऽस्तु प्रसङ्गेन भूत्वा गर्भे क्रमादसौ। गर्भादिमरणान्तं च प्राप्य दुःखं म्रियेत्पुनः॥ ५३॥

इसके बाद हजारों जन्मोंतक तिर्यक् (पशु-पक्षी)-का शरीर प्राप्त करके वे बोझा ढोने आदि कार्योंसे दुःख प्राप्त करते हैं॥ ५१॥ फिर पक्षी बनकर वर्षा, शीत तथा आतप (घाम)-से दुःखी होते हैं। इसके बाद अन्तमें जब पुण्य और पाप बराबर हो जाते हैं तब मनुष्यकी योनि मिलती है॥ ५२॥ स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे (वह) गर्भमें

उत्पन्न होकर क्रमशः गर्भसे लेकर मृत्युतकके दुःख प्राप्त करके पुनः मर जाता है॥ ५३॥

समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते सर्वदेहिनाम्। एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे॥ ५४॥
घटीयन्त्रं यथा मर्त्या भ्रमन्ति मम मायया। भूमौ कदाचिन्नरके कर्मपाशसमावृताः॥ ५५॥

इस प्रकार सभी प्राणियोंका जन्म और विनाश होता है। यह जन्म-मरणका चक्र चारों* प्रकारकी सृष्टिमें चलता रहता है॥ ५४॥ मेरी मायासे प्राणी रहट (घटीयन्त्र)-की भाँति ऊपर-नीचेकी योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। कर्मपाशसे बँधे रहकर कभी वे नरकमें और कभी भूमिपर जन्म लेते हैं॥ ५५॥

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरके प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥ ५६॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ ५७॥

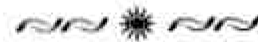
इति गरुडपुराणे सारोद्धारे पापचिह्ननिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥



* चतुर्विध प्राणिसमूहमें (१) उद्भिज्ज (वृक्ष, लता, गुल्म आदि), (२) स्वेदज (खटमल, जूँ आदि), (३) अण्डज (पक्षी आदि) तथा (४) जरायुज (मनुष्य आदि)-की गणना होती है।

दान न देनेसे प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्र हो जानेपर फिर पाप करता है। पापके प्रभावसे नरकमें जाता है और नरकसे लौटकर पुनः दरिद्र और पुनः पापी होता है॥ ५६॥ प्राणीके द्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्मोंका फलभोग उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है; क्योंकि सैकड़ों कल्पोंके बीत जानेपर भी बिना भोगके कर्मफलका नाश नहीं होता॥ ५७॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'पापचिह्ननिरूपण' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥



छठा अध्याय

जीवकी गर्भावस्थाका दुःख, गर्भमें पूर्वजन्मोंके ज्ञानकी स्मृति, जीवद्वारा भगवान्‌से अब आगे दुष्कर्मोंको न करनेकी प्रतिज्ञा, गर्भवाससे बाहर आते ही वैष्णवी मायाद्वारा उसका मोहित होना तथा गर्भावस्थाकी प्रतिज्ञाको भुला देना

गरुड उवाच

कथमुत्पद्यते मातुर्जठरे नरकागतः। गर्भादिदुःखं यद्भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव॥ १॥

गरुडजीने कहा— हे केशव! नरकसे आया हुआ जीव माताके गर्भमें कैसे उत्पन्न होता है? वह गर्भवास आदिके दुःखको जिस प्रकार भोगता है, वह (सब भी) मुझे बताइये॥ १॥

विष्णुरुवाच

स्त्रीपुंसोस्तु प्रसङ्गेन निरुद्धे शुक्रशोणिते। यथाऽयं जायते मर्त्यस्तथा वक्ष्याम्यहं तव॥ २॥

भगवान् विष्णुने कहा— स्त्री और पुरुषके संयोगसे वीर्य और रजके स्थिर हो जानेपर जैसे मनुष्यकी उत्पत्ति होती है, उसे मैं तुम्हें कहूँगा॥ २॥

ऋतुमध्ये हि पापानां देहोत्पत्तिः प्रजायते। इन्द्रस्य ब्रह्महत्याऽस्ति यस्मिन् तस्मिन् दिनत्रये॥ ३॥

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी ह्येता नरकागतमातरः॥ ४॥
कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतः कणाश्रयः॥ ५॥
कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्। दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥ ६॥

ऋतुकालमें आरम्भके तीन दिनोंतक इन्द्रको लगी ब्रह्महत्याका* चतुर्थांश रजस्वला स्त्रियोंमें रहता है, उस ऋतुकालके मध्यमें किये गये गर्भाधानके फलस्वरूप पापात्माओंके देहकी उत्पत्ति होती है॥ ३॥ रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन रजकी (धोबिन) कहलाती है। (तदनुसार उनमें स्पर्शदोष रहता है) नरकसे आये हुए प्राणियोंकी ये ही तीन माताएँ होती हैं॥ ४॥ दैवकी प्रेरणासे कर्मानुरोधी शरीर प्राप्त करनेके लिये प्राणी पुरुषके वीर्यकणका आश्रय लेकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट होता है॥ ५॥ एक रात्रिमें वह शुक्राणु कललके रूपमें, पाँच रात्रिमें बुद्बुदके रूपमें, दस दिनमें बेरके समान तथा उसके पश्चात् मांसपेशियोंसे युक्त अण्डाकार हो जाता है॥ ६॥

मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्गाद्यङ्गविग्रहः। नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥ ७॥

---

* शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः। रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते॥ (श्रीमद्भा० ६।९।९)

स्त्रियोंने यह वर पाकर कि वे सर्वदा पुरुषका सहवास कर सकें, ब्रह्महत्याका तीसरा चतुर्थांश स्वीकार किया। उनकी ब्रह्महत्या प्रत्येक महीनेमें रजके रूपमें दिखायी पड़ती है।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥ ८ ॥
मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते। शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥ ९ ॥

एक मासमें सिर, दो मासमें बाहु आदि शरीरके सभी अङ्ग, तीसरे मासमें नख, लोम, अस्थि, चर्म तथा लिङ्गबोधक छिद्र उत्पन्न होते हैं॥ ७॥ चौथे मासमें रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातुएँ तथा पाँचवें मासमें भूख-प्यास पैदा होती है। छठे मासमें जरायुमें लिपटा हुआ वह जीव माताकी दाहिनी कोखमें घूमता है॥ ८॥ और माताके द्वारा खाये-पिये अन्नादिसे बढ़े हुए धातुओंवाला वह जन्तु विष्ठा-मूत्रके दुर्गन्धयुक्त गड्ढेरूप गर्भाशयमें सोता है॥ ९॥

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम्। मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥ १०॥
कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः। उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः॥ ११॥

वहाँ गर्भस्थ क्षुधित कृमियोंके द्वारा उसके सुकुमार अङ्ग प्रतिक्षण बार-बार काटे जाते हैं, जिससे अत्यधिक क्लेश होनेके कारण वह जीव मूर्च्छित हो जाता है॥ १०॥ माताके द्वारा खाये हुए कड़ुवे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे तथा खट्टे पदार्थोंके अति उद्वेजक संस्पर्शसे उसे समूचे अङ्गमें वेदना होती है और जरायु (झिल्ली)-से लिपटा हुआ वह जीव आँतोंद्वारा बाहरसे ढका रहता है॥ ११॥

आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः। अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे॥ १२॥
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भवम्। स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते॥ १३॥
नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः। स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥ १४॥
आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः। नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥ १५॥

उसकी पीठ और गरदन कुण्डलाकार रहती है। इस प्रकार अपने अङ्गोंसे चेष्टा करनेमें असमर्थ होकर वह जीव पिंजरेमें स्थित पक्षीकी भाँति माताकी कुक्षिमें अपने सिरको दबाये हुए पड़ा रहता है॥ १२॥ भगवान्‌की कृपासे अपने सैकड़ों जन्मोंके कर्मोंका स्मरण करता हुआ वह गर्भस्थ जीव लम्बी श्वास लेता है। ऐसी स्थितिमें भला उसे कौन-सा सुख प्राप्त हो सकता है?॥ १३॥ (मांस-मज्जा आदि) सात धातुओंके आवरणमें आवृत वह ऋषिकल्प जीव भयभीत होकर हाथ जोड़कर विकल वाणीसे उन भगवान्‌की स्तुति करता है, जिन्होंने उसको माताके उदरमें डाला है॥ १४॥ सातवें महीनेके आरम्भसे ही सभी जन्मोंके कर्मोंका ज्ञान हो जानेपर भी गर्भस्थ प्रसूतिवायुके द्वारा चालित होकर वह विष्ठामें उत्पन्न सहोदर (उसी पेटमें उत्पन्न अन्य) कीड़ेकी भाँति एक स्थानपर ठहर नहीं पाता॥ १५॥

जीव उवाच

श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम्। व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्॥ १६॥

जीव कहता है—मैं लक्ष्मीके पति, जगत्‌के आधार, अशुभका नाश करनेवाले तथा शरणमें आये हुए जीवोंके

प्रति वात्सल्य रखनेवाले भगवान् विष्णुकी शरणमें जाता हूँ॥ १६॥

त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके। अहं ममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम्॥ १७॥
कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः॥ १८॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत् स्मरिष्ये पदं तव। तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥ १९॥
विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना। इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः॥ २०॥
येनेदृशं मे विज्ञानं दत्तं दीनदयालुना। तमेव शरणं यामि पुनर्मे माऽस्तु संसृतिः॥ २१॥
न च निर्गन्तुमिच्छामि बहिर्गर्भात्कदाचन। यत्र यातस्य मे पापकर्मणा दुर्गतिर्भवेत्॥ २२॥
तस्मादत्र महद्दुःखे स्थितोऽपि विगतक्लमः। उद्धरिष्यामि संसारादात्मानं ते पदाश्रयः॥ २३॥

हे नाथ! आपकी मायासे मोहित होकर मैं देहमें अहंभाव तथा पुत्र और पत्नी आदिमें ममत्वभावके अभिमानसे जन्म-मरणके चक्करमें फँसा हूँ॥ १७॥ मैंने अपने परिजनोंके उद्देश्यसे शुभ और अशुभ कर्म किये, किंतु अब मैं उन कर्मोंके कारण अकेला जल रहा हूँ। उन कर्मोंके फल भोगनेवाले पुत्र-कलत्रादि अलग हो गये॥ १८॥ यदि इस गर्भसे निकलकर मैं बाहर आऊँ तो फिर आपके चरणोंका स्मरण करूँगा और ऐसा उपाय करूँगा जिससे मुक्ति प्राप्त कर लूँ॥ १९॥ विष्ठा और मूत्रके कुँएमें गिरा हुआ तथा जठराग्निसे जलता हुआ एवं यहाँसे बाहर निकलनेकी इच्छा करता हुआ मैं कब बाहर निकल पाऊँगा॥ २०॥ जिस दीनदयालु परमात्माने मुझे इस प्रकारका विशेष ज्ञान दिया है, मैं उन्हींकी शरण

ग्रहण करता हूँ जिससे मुझे पुनः संसारके चक्करमें न आना पड़े॥ २१॥ अथवा मैं माताके गर्भगृहसे कभी भी बाहर जानेकी इच्छा नहीं करता, (क्योंकि) बाहर जानेपर पापकर्मोंसे पुनः मेरी दुर्गति हो जायगी॥ २२॥ इसलिये यहाँ बहुत दुःखकी स्थितिमें रहकर भी मैं खेदरहित होकर आपके चरणोंका आश्रय लेकर संसारसे अपना उद्धार कर लूँगा॥ २३॥

श्रीभगवानुवाच

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः। सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः॥ २४॥
तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक्शिर आतुरः। विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः॥ २५॥
पतितो भुवि विण्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते। रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः॥ २६॥

श्रीभगवान् बोले—इस प्रकारकी बुद्धिवाले एवं स्तुति करते हुए दस मासके ऋषिकल्प उस जीवको प्रसूतिवायु प्रसवके लिये तुरंत नीचेकी ओर ढकेलता है॥ २४॥ प्रसूतिमार्गके द्वारा नीचे सिर करके सहसा गिराया गया वह आतुर जीव अत्यन्त कठिनाईसे बाहर निकलता है और उस समय वह श्वास नहीं ले पाता है तथा उसकी स्मृति भी नष्ट हो जाती है॥ २५॥ पृथ्वीपर विष्ठा और मूत्रके बीच गिरा हुआ वह जीव मलमें उत्पन्न कीड़ेकी भाँति चेष्टा करता है और विपरीत गति प्राप्त करके ज्ञान नष्ट हो जानेके कारण अत्यधिक रुदन करने लगता है॥ २६॥

गर्भे व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत्। सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्येत बन्धनात्॥ २७॥
यदा गर्भाद् बहिर्याति कर्मभोगादनन्तरम्। तदैव वैष्णवी माया मोहयत्येव पूरुषम्॥ २८॥

स तदा मायया स्पृष्टो न किञ्चिद्वदतेऽवशः। शैशवादिभवं दुःखं पराधीनतयाऽश्नुते॥ २९॥

गर्भमें, रुग्णावस्थामें, श्मशानभूमिमें तथा पुराणके पारायण या श्रवणके समय जैसी बुद्धि होती है, वह यदि स्थिर हो जाय तो कौन व्यक्ति सांसारिक बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकता॥ २७॥ कर्मभोगके अनन्तर जीव जब गर्भसे बाहर आता है तब उसी समय वैष्णवी माया उस पुरुषको मोहित कर देती है॥ २८॥ उस समय मायाके स्पर्शसे वह जीव विवश होकर कुछ बोल नहीं पाता, प्रत्युत शैशवादि अवस्थाओंमें होनेवाले दुःखोंको पराधीनकी भाँति भोगता है॥ २९॥

परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः। अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्या तु मनीश्वरः॥ ३०॥
शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदूषिते। नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने॥ ३१॥
तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः। रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा॥ ३२॥

उसका पोषण करनेवाले लोग उसकी इच्छाको जान नहीं पाते। अतः प्रत्याख्यान करनेमें असमर्थ होनेके कारण वह अनभिप्रेत (विपरीत) स्थितिको प्राप्त हो जाता है॥ ३०॥ स्वेदज जीवोंसे दूषित तथा विष्ठा-मूत्रसे अपवित्र शय्यापर सुलाये जानेके कारण अपने अङ्गोंको खुजलानेमें, आसनसे उठनेमें तथा अन्य चेष्टाओंको करनेमें वह असमर्थ रहता है॥ ३१॥ जैसे एक कृमि दूसरे कृमिको काटता है, उसी प्रकार ज्ञानशून्य और रोते हुए उस शिशुकी कोमल त्वचाको डाँस, मच्छर और खटमल आदि जन्तु व्यथित करते हैं॥ ३२॥

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च। ततो यौवनमासाद्य याति सम्पदमासुरीम्॥ ३३॥

तदा दुर्व्यसनासक्तो नीचसङ्गपरायणः। शास्त्रसत्पुरुषाणां च द्वेष्टा स्यात्कामलम्पटः॥ ३४॥

इस प्रकार शैशवावस्थाका दुःख भोगकर वह पौगण्डावस्थामें भी दुःख ही भोगता है। तदनन्तर युवावस्था प्राप्त होनेपर आसुरी सम्पत्ति[1] को प्राप्त होता है॥ ३३॥ तब वह दुर्व्यसनोंमें आसक्त होकर नीच पुरुषोंके साथ सम्बन्ध बनाता है और (वह) कामलम्पट प्राणी शास्त्र तथा सत्पुरुषोंसे द्वेष करता है॥ ३४॥

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः। प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत्॥ ३५॥

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च। एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥ ३६॥

भगवान्की मायारूपी स्त्रीको देखकर वह अजितेन्द्रिय पुरुष उसकी भावभंगिमासे प्रलोभित होकर महामोहरूप अन्धतममें उसी प्रकार गिर पड़ता है जिस प्रकार अग्निमें पतिंगा॥ ३५॥ हिरन, हाथी, पतिंगा, भौंरा और मछली—ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध तथा रस—इन पाँच विषयोंमें एक-एकमें आसक्ति होनेके कारण ही मारे जाते हैं, फिर एक प्रमादी व्यक्ति जो पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोंका भोग करता है, वह क्यों नहीं मारा जायगा?॥ ३६॥

अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः। सह देहेन मानेन वर्द्धमानेन मन्युना॥ ३७॥

---

१. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥ (गीता १६। ४)
हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी-सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः। बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा॥ ३८॥
एवं यो विषयासक्त्या नरत्वमतिदुर्लभम्। वृथा नाशयते मूढस्तस्मात् पापतरो हि कः॥ ३९॥

अभीप्सित वस्तुकी अप्राप्तिकी स्थितिमें अज्ञानके कारण ही क्रोध हो आता है और शोकको प्राप्त व्यक्ति देहके साथ ही बढ़नेवाले अभिमान तथा क्रोधके कारण वह कामी व्यक्ति स्वयं अपने नाशहेतु दूसरे कामीसे शत्रुता कर लेता है। इस प्रकार अधिक बलशाली अन्य कामीजनोंके द्वारा वह वैसे ही मारा जाता है, जैसे किसी बलवान् हाथीसे दूसरा हाथी॥ ३७-३८॥ इस प्रकार जो मूर्ख अत्यन्त दुर्लभ मानवजीवनको विषयासक्तिके कारण व्यर्थमें नष्ट कर लेता है, उससे बढ़कर पापी और कौन होगा?॥ ३९॥

जातीशतेषु लभते भुवि मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम्।
यस्तत्र पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात्॥ ४०॥
ततस्तां वृद्धतां प्राप्य महाव्याधिसमाकुलः। मृत्युं प्राप्य महद् दुःखं नरकं याति पूर्ववत्॥ ४१॥
एवं गताऽगतैः कर्मपाशैर्बद्धाश्च पापिनः। कदापि न विरज्यन्ते मम मायाविमोहिताः॥ ४२॥
इति ते कथिता तार्क्ष्य पापिनां नारकीगतिः। अन्त्येष्टिकर्महीनानां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४३॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे पापजन्मादिदुःखनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥



सैकड़ों योनियोंको पार करके पृथ्वीपर दुर्लभ मानवयोनि प्राप्त होती है। मानवशरीर प्राप्त होनेपर भी द्विजत्वकी प्राप्ति उससे भी अधिक दुर्लभ है। अतिदुर्लभ द्विजत्वको प्राप्तकर जो व्यक्ति द्विजत्वकी रक्षाके लिये अपेक्षित धर्म-कर्मानुष्ठान नहीं करता, केवल इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही प्रयत्नशील रहता है, उसके हाथमें आया हुआ अमृतस्वरूप वह अवसर उसके प्रमादसे नष्ट हो जाता है॥ ४०॥ इसके बाद वृद्धावस्थाको प्राप्त करके महान् व्याधियोंसे व्याकुल होकर मृत्युको प्राप्त करके वह पूर्ववत् महान् दुःखपूर्ण नरकमें जाता है॥ ४१॥ इस प्रकार जन्म-मरणके हेतुभूत कर्मपाशोंसे बँधे हुए वे पापी मेरी मायासे विमोहित होकर कभी भी वैराग्यको प्राप्त नहीं करते॥ ४२॥ हे ताक्ष्र्य! इस प्रकार मैंने तुम्हें अन्त्येष्टिकर्मसे हीन पापियोंकी नरकगति बतायी, अब आगे और क्या सुनना चाहते हो?॥ ४३॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'पापजन्मादिदुःखनिरूपण' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥



सातवाँ अध्याय

पुत्रकी महिमा, दूसरेके द्वारा दिये गये पिण्डदानादिसे प्रेतत्वसे मुक्ति—इसके प्रतिपादनमें राजा बभ्रुवाहन तथा प्रेतकी कथा

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु गरुडः कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत्। जनानामुपकारार्थं पुनः पप्रच्छ केशवम्॥ १ ॥

सूतजीने कहा—ऐसा सुनकर पीपलके पत्तेकी भाँति काँपते हुए गरुडजीने प्राणियोंके उपकारके लिये पुनः भगवान् विष्णुसे पूछा—॥ १ ॥

गरुड उवाच

कृत्वा पापानि मनुजाः प्रमादाद् बुद्धितोऽपि वा। न यान्ति यातना याम्याः केनोपायेन कथ्यताम्॥ २ ॥
संसारार्णवमग्नानां नराणां दीनचेतसाम्। पापोपहतबुद्धीनां विषयोपहतात्मनाम्॥ ३ ॥
उद्धारार्थं वद स्वामिन् पुराणार्थं विनिश्चयम्। उपायं येन मनुजाः सद्गतिं यान्ति माधव॥ ४ ॥

गरुडजीने कहा—हे स्वामिन्! किस उपायसे मनुष्य प्रमादवश अथवा जानकर पापकर्मोंको करके भी यमकी यातनाको न प्राप्त हो, उसे कहिये॥ २॥ संसाररूपी सागरमें डूबे हुए, दीन चित्तवाले, पापसे नष्ट

बुद्धिवाले तथा विषयोंके कारण दूषित आत्मावाले मनुष्योंके उद्धारके लिये हे माधव! पुराणोंमें सुनिश्चित किये गये उपायको बताइये, जिससे मनुष्य सद्गति प्राप्त कर सकें॥ ३-४॥

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वं ते कथयाम्यहम्॥ ५ ॥
दुर्गतिः कथिता पूर्वमपुत्राणां च पापिनाम्। पुत्रिणां धार्मिकाणां तु न कदाचित्खगेश्वर॥ ६ ॥
पुत्रजन्मनिरोधः स्याद्यदि केनापि कर्मणा। तदा कश्चिदुपायेन पुत्रोत्पत्तिं प्रसाधयेत्॥ ७ ॥
हरिवंशकथां श्रुत्वा शतचण्डीविधानतः। भक्त्या श्रीशिवमाराध्य पुत्रमुत्पादयेत्सुधीः॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे तार्क्ष्य! मनुष्योंके हितकी कामनासे तुमने अच्छी बात पूछी है। सावधान होकर सुनो, मैं तुम्हें सब कुछ बताता हूँ॥ ५॥ हे खगेश्वर! मैंने इसके पहले पुत्ररहित और पापी मनुष्योंकी यातनाका वर्णन किया है। पुत्रवान् तथा धार्मिक मनुष्योंकी पूर्वोक्त दुर्गति कभी नहीं होती॥ ६॥ यदि अपने पूर्वार्जित कर्मोंके कारण पुत्रोत्पत्तिमें विघ्न हो तो किसी उपायसे पुत्रकी उत्पत्ति सम्पन्न करे। हरिवंशपुराणकी कथा सुनकर, विधानपूर्वक शतचण्डी यज्ञ करके भक्तिपूर्वक शिवकी आराधना करके तथा विद्वान्‌को पुत्र उत्पन्न करना चाहिये॥ ७-८॥

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥ ९ ॥
एकोऽपि पुत्रो धर्मात्मा सर्वं तारयते कुलम्। पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी॥ १०॥

यतः पुत्र पितरोंकी पुम् नामक नरकसे रक्षा करता है, अतः स्वयं भगवान् ब्रह्माने ही उसे पुत्र नामसे कहा है॥ ९॥ एक धर्मात्मा पुत्र सम्पूर्ण कुलको तार देता है। पुत्रके द्वारा व्यक्ति लोकोंको जीत लेता है, ऐसी सनातनी श्रुति है॥ १०॥

इति वेदैरपि प्रोक्तं पुत्रमाहात्म्यमुत्तमम्। तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात्॥ ११॥
पौत्रस्य स्पर्शनान्मर्त्यो मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानत्येद्दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ १२॥
ब्राह्मोढापुत्रोन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत्। एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतांस्त्यजेत्॥ १३॥

इस प्रकार वेदोंने भी पुत्रके उत्तम माहात्म्यको कहा है। इसलिये पुत्रका मुख देख करके मनुष्य पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है॥ ११॥ पौत्रका स्पर्श करके मनुष्य तीनों (देव, ऋषि, पितृ) ऋणोंसे मुक्त हो जाता है, (इस प्रकार) पुत्र-पौत्र और प्रपौत्रसे यमलोकोंका अतिक्रमण करके स्वर्ग आदिको प्राप्त करता है॥ १२॥ ब्राह्मविवाह*की विधिसे ब्याही गयी पत्नीसे उत्पन्न औरस पुत्र ऊर्ध्वगति प्राप्त कराता है और संगृहीत पुत्र अधोगतिकी ओर ले जाता है। हे खगश्रेष्ठ! ऐसा जान करके व्यक्ति हीनजातिकी स्त्रीसे उत्पन्न पुत्रोंको त्याग दे॥ १३॥

सवर्णेभ्यः सवर्णासु ये पुत्रा औरसाः खग। त एव श्राद्धदानेन पितॄणां स्वर्गहेतवः॥ १४॥
श्राद्धेन पुत्रदत्तेन स्वर्यातीति किमुच्यते। प्रेतोऽपि परदत्तेन गतः स्वर्गमथो शृणु॥ १५॥

* ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच—ये आठ प्रकारके विवाह कहे गये हैं। (मनु० ३। २१)

अत्रैषोदाहरिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। और्ध्वदैहिकदानस्य परं माहात्म्यसूचकम्॥ १६॥

हे खग! सवर्ण पुरुषोंसे सवर्णा स्त्रियोंमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे औरस पुत्र कहे जाते हैं और वे ही श्राद्ध प्रदान करके पितरोंको स्वर्ग प्राप्त करानेके कारण होते हैं॥ १४॥ औरस पुत्रके द्वारा किये गये श्राद्धसे पिताको स्वर्ग प्राप्त होता है, इस विषयमें क्या कहना? दूसरेके द्वारा दिये गये श्राद्धसे भी प्रेत स्वर्गको चला जाता है, इस विषयमें सुनो॥ १५॥ यहाँ मैं एक प्राचीन इतिहास कहूँगा, जो और्ध्वदैहिक दानके श्रेष्ठ माहात्म्यको सूचित करता है॥ १६॥

पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजाऽऽसीद् बभ्रुवाहनः। महोदये पुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः॥ १७॥
यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः। शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः॥ १८॥
पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान्। क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान् दण्डयन्नृपः॥ १९॥

हे तार्क्ष्य! पूर्वकालमें त्रेतायुगमें महोदय नामके रमणीय नगरमें महाबलशाली और धर्मपरायण बभ्रुवाहन नामक एक राजा रहता था॥ १७॥ वह यज्ञानुष्ठानपरायण, दानियोंमें श्रेष्ठ, लक्ष्मीसे सम्पन्न, ब्राह्मणभक्त तथा साधु पुरुषोंके प्रति अनुराग रखनेवाला, शील एवं आचार आदि गुणोंसे युक्त, स्वजनोंके प्रति अपनत्व और इतरजनोंके प्रति दयाके भावसे सम्पन्न था॥ १८॥ क्षात्रधर्मपरायण वह (राजा बभ्रुवाहन) औरस पुत्रकी भाँति धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करता था और दण्ड देनेयोग्य अपराधियोंको दण्ड देता था॥ १९॥

स कदाचिन्महाबाहुः ससैन्यो मृगयां गतः। वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम्॥ २०॥

नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् । वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत॥ २१ ॥
तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च। बाणमादाय स तस्य वनेऽदर्शनमेयिवान्॥ २२ ॥

वह महाबाहु किसी समय सेनाके साथ मृगयाके लिये नाना वृक्षोंसे युक्त एक घनघोर वनमें प्रविष्ट हुआ॥ २०॥ वह वन नाना मृगगणों (पशुओं)-से व्याप्त और अनेक पक्षियोंसे निनादित था। उस समय राजाने वनके मध्यमें दूरसे एक मृगको देखा॥ २१॥ राजाके द्वारा सुदृढ़ बाणसे विद्ध वह मृग बाणसहित जंगलमें अदृश्य हो गया॥ २२॥

कक्षेण रुधिराद्रेण स राजाऽनुजगाम तम्। ततो मृगप्रसंगेन वनमन्यद्विवेश सः॥ २३ ॥
क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः। जलाशयं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत॥ २४ ॥
पपौ तदुदकं शीतं पद्मगन्धादिवासितम्। ततोऽवतीर्य सलिलाद्विश्रमो बभ्रुवाहनः॥ २५ ॥
ददर्श न्यग्रोधतरुं शीतच्छायं मनोहरम्। महाविटपविस्तीर्णं पक्षिसंघनिनादितम्॥ २६ ॥

रुधिरसे गीली हुई घासपर अंकित चिह्नसे राजाने उसका पीछा किया। तब मृगके प्रसंगसे वह राजा दूसरे वनमें जा पहुँचा॥ २३॥ भूख-प्याससे सूखे हुए कण्ठवाला तथा परिश्रमके संतापसे पीडित उस राजाने एक जलाशयके समीप पहुँचकर घोड़ेके साथ उसमें स्नान किया॥ २४॥ तथा कमलकी गन्धादिसे सुगन्धित शीतल जलका पान किया। इसके बाद उस जलाशयसे बाहर निकलकर श्रमरहित राजा बभ्रुवाहनने वृक्षरूपी विशाल शाखाओंके कारण

फैले हुए, मनोहर और शीतल छायावाले तथा पक्षिसमूहोंसे कूजित एक वटवृक्षको देखा॥ २५-२६॥

वनस्य तस्य सर्वस्य महाकेतुमिव स्थितम्। मूलं तस्य समासाद्य निषसाद महीपतिः॥ २७॥
अथ प्रेतं ददर्शासौ क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलेन्द्रियम्। उत्कचं मलिनं कुब्जं निर्मांसं भीमदर्शनम्॥ २८॥

वह वृक्ष सम्पूर्ण वनकी महती पताकाकी भाँति स्थित था। उसकी जड़के पास जाकर राजा बैठ गया॥ २७॥ उसके बाद राजाने भूख और प्याससे व्याकुल इन्द्रियोंवाले, ऊपरकी ओर उठे हुए बालोंवाले, अत्यन्त मलिन, कुबड़े और मांसरहित एक भयावह प्रेतको देखा॥ २८॥

तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः। प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तं घोरामटवीमागतं नृपम्॥ २९॥
समुत्सुकमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागतः। अब्रवीत् स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः॥ ३०॥
प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्। त्वत्संयोगान्महाबाहो जातो धन्यतरोऽस्म्यहम्॥ ३१॥

उस विकृत आकृतिवाले भयावह प्रेतको देखकर बभ्रुवाहन विस्मित हो गया। प्रेत भी घने जंगलमें आये हुए राजाको देखकर चकित हो गया और समुत्सुक मनवाला होकर वह प्रेतराज उसके पास आया। हे तार्क्ष्य! तब उस प्रेतराजने राजासे कहा— ॥ २९-३०॥ हे महाबाहो! आपके सम्बन्धसे मैंने प्रेतभावका त्याग कर दिया है अर्थात् मेरा प्रेतभाव छूट गया है और मैं परम शान्तिको प्राप्त हो गया हूँ तथा धन्यतर हो गया हूँ॥ ३१॥

राजोवाच

कृष्णवर्ण करालस्य प्रेतत्वं घोरदर्शनम्। केन कर्मविपाकेन प्राप्तं ते बह्वमङ्गलम्॥ ३२॥
प्रेतत्वकारणं तात ब्रूहि सर्वमशेषतः। कोऽसि त्वं केन दानेन प्रेतत्वं ते विनश्यति॥ ३३॥

राजाने कहा—हे कृष्णवर्णवाले तथा भयावह रूपवाले प्रेत! किस कर्मके प्रभावसे देखनेमें डरावने लगनेवाले और बहुत ही अमङ्गलकारी इस प्रेतत्व-स्वरूपको तुमने प्राप्त किया है। हे तात! अपने प्रेतत्वकी प्राप्तिका सारा कारण बतलाओ। तुम कौन हो और किस दानसे तुम्हारा प्रेतत्व नष्ट होगा?॥ ३२-३३॥

प्रेत उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव। प्रेतत्वकारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि॥ ३४॥
वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्॥ ३५॥
हर्म्यप्रासादशोभाढ्यं नानाधर्मसमन्वितम्। तत्राऽहं न्यवसं तात देवार्चनरतः सदा॥ ३६॥

प्रेतने कहा—हे श्रेष्ठ राजन्! मैं आरम्भसे आपको सब कुछ बताता हूँ। प्रेतत्वका कारण सुनकर आप कृपया उसे दूर करनेकी दया कीजिये॥ ३४॥ वैदिश नामका एक नगर था, जो सभी प्रकारकी सम्पत्तियोंसे समृद्ध, नाना जनपदोंसे व्याप्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण, धनिकोंके भवनों तथा देव एवं राजप्रासादोंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके धर्मानुष्ठानोंसे युक्त था। हे तात! मैं वहाँ रहता हुआ निरन्तर देवपूजा किया करता था॥ ३५-३६॥

वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते। हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस्तथा॥ ३७॥
विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पिता मया। दीनान्धकृपणेभ्यश्च दत्तमन्नमनेकधा॥ ३८॥

आपको विदित होना चाहिये कि मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हुआ और मेरा नाम सुदेव था। मैंने हव्य प्रदान करके देवताओंका तथा कव्य प्रदान करके पितरोंका तर्पण किया*॥ ३७॥ अनेक प्रकारके दानोंसे मैंने ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया था और अनेक बार दीन, अंधे एवं कृपण (जरूरतमन्द) मनुष्योंको अन्न दिया था॥ ३८॥

तत्सर्वं निष्फलं राजन् मम दैवादुपागतम्। यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद् वदामि ते॥ ३९॥
ममैव सन्ततिर्नास्ति न सुहृन्न च बान्धवः। न च मित्रं हि मे तादृग् यः कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्॥ ४०॥
यस्य न स्यान्महाराज श्राद्धं मासिकषोडशम्। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ४१॥

(किंतु) हे राजन्! मेरा यह सारा सत्कर्म मेरे दुर्दैवसे निष्फल हो गया। जिस कारण मेरा सुकृत निष्फल हुआ वह मैं आपको बताता हूँ॥ ३९॥ मुझे कोई सन्तान नहीं है, मेरा कोई सुहृद् नहीं है, कोई बान्धव नहीं है और न ऐसा कोई मित्र ही है जो मेरी औध्र्वदैहिक क्रिया करता॥ ४०॥ हे महाराज! (मृत्युके अनन्तर) जिस व्यक्तिके उद्देश्यसे षोडश मासिक श्राद्ध नहीं दिये जाते, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर ही रहता है अर्थात् दूर नहीं होता॥ ४१॥

---

* देवार्थमन्नं हव्यं स्यात् पित्र्यर्थं कव्यमेव च।
देवताओंके निमित्त प्रदान किया जानेवाला द्रव्य हव्य तथा पितरोंके निमित्त प्रदान किया जानेवाला द्रव्य कव्य कहलाता है।

त्वमौर्ध्वदैहिकं कृत्वा मामुद्धर महीपते। वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते॥ ४२॥
तन्मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते। यथा मे सद्गतिर्भूयात् प्रेतयोनिश्च गच्छति॥ ४३॥
यथा कार्यं त्वया वीर मम चेदिच्छसि प्रियम्। क्षुधातृषादिभिर्दुःखैः प्रेतत्वं दुःसहं मम॥ ४४॥

हे महाराज! आप मेरा और्ध्वदैहिक कृत्य करके मेरा उद्धार कीजिये। (क्योंकि) इस लोकमें राजा सभी वर्णोंका बन्धु कहा जाता है॥ ४२॥ इसलिये हे राजेन्द्र! आप मेरा उद्धार कीजिये, मैं आपको मणिरत्न देता हूँ। हे वीर! यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो जैसे मेरी सद्‌गति हो सके और मेरी प्रेतयोनिसे जैसे मुक्ति हो सके, वैसा आप करें। भूख-प्यास आदि दुःखोंके कारण यह प्रेतयोनि मेरे लिये दुःसह हो गयी है॥ ४३-४४॥

स्वादूदकं फलं चास्ति वनेऽस्मिञ्छीतलं शिवम्। न प्राप्नोमि क्षुधार्तोऽहं तृषार्तो न जलं क्वचित्॥ ४५॥
यदि मे हि भवेद्राजन् विधिर्नारायणो महान्। तदग्रे वेदमन्त्रैश्च क्रिया सर्वौर्ध्वदैहिकी॥ ४६॥
तदा नश्यति मे नूनं प्रेतत्वं नाऽत्र संशयः। वेदमन्त्रास्तपोदानं दया सर्वत्र जन्तुषु॥ ४७॥
सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसंगतिः। प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम्॥ ४८॥

इस वनमें सुन्दर स्वादवाले शीतल जल और फल विद्यमान हैं, फिर भी मैं भूख और प्याससे पीड़ित हूँ। मुझे जल और फलकी प्राप्ति नहीं हो पाती॥ ४५॥ हे राजन्! यदि मेरे उद्देश्यसे यथाविधि नारायणबलि की जाय, उसके बाद वेदमन्त्रोंके द्वारा मेरी सभी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न की जाय तो निश्चित ही मेरा

प्रेतत्व नष्ट हो जायगा, इसमें संशय नहीं है। मैंने सुन रखा है कि वेदके मन्त्र, तप, दान और सभी प्राणियोंमें दया, सत्-शास्त्रोंका श्रवण, भगवान् विष्णुकी पूजा और सज्जनोंकी संगति—ये सब प्रेतयोनिके विनाशके लिये होते हैं॥ ४६—४८॥

अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम्।
सुवर्णद्वयमानीय सुवर्णं न्यायसंचितम्। तस्य नारायणस्यैकां प्रतिमां भूप कल्पयेत्॥ ४९॥
पीतवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वाभरणभूषिताम्। स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य यजेत्ततः॥ ५०॥

इसलिये मैं आपसे प्रेतत्वको नष्ट करनेवाली विष्णुपूजाको कहूँगा। हे राजन्! न्यायोपार्जित दो सुवर्ण (३२ माशा) भारका सोना लेकर उससे नारायणकी एक प्रतिमा बनवाये, जिसे विविध पवित्र जलोंसे स्नान कराकर दो पीले वस्त्रोंसे वेष्टित करके सभी अलङ्कारोंसे विभूषितकर अधिवासित करे, तदनन्तर उसका पूजन करे॥ ४९-५०॥

पूर्वे तु श्रीधरं तस्य दक्षिणे मधुसूदनम्। पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम्॥ ५१॥
मध्ये पितामहं चैव तथा देवं महेश्वरम्। पूजयेच्च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक्॥ ५२॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य वह्नौ सन्तर्प्य देवताः। घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवांश्च तर्पयेत्॥ ५३॥

उस प्रतिमाके पूर्वभागमें श्रीधर, दक्षिणमें मधुसूदन, पश्चिममें वामन और उत्तरमें गदाधर, मध्यमें पितामह ब्रह्मा तथा महादेव शिवकी स्थापना करके गन्ध-पुष्पादि द्रव्योंके द्वारा विधि-विधानसे पृथक्-

पृथक् पूजन करे॥ ५१-५२॥ उसके बाद प्रदक्षिणा करके अग्निमें (हवन करके) देवताओंको तृप्त करके घृत, दधि तथा दूधसे विश्वेदेवोंको तृप्त करे॥ ५३॥

ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः। नारायणाग्रे विधिवत्स्वां क्रियामौर्ध्वदैहिकीम्॥ ५४॥
आरभेत यथाशास्त्रं क्रोधलोभविवर्जितः। कुर्याच्छ्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा॥ ५५॥
ततः पदानि विप्रेभ्यो दद्याच्चैव त्रयोदश। शय्यादानं प्रदत्त्वा च घटं प्रेतस्य निर्वपेत्॥ ५६॥

तदनन्तर समाहित चित्तवाला यजमान स्नान करके नारायणके आगे विनीतात्मा होकर विधिपूर्वक मनमें संकल्पित और्ध्वदैहिक क्रियाका आरम्भ करे॥ ५४॥ इसके बाद क्रोध और लोभसे रहित होकर शास्त्र-विधिसे सभी श्राद्धोंको करे तथा वृषोत्सर्ग करे॥ ५५॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंको तेरह पददान* करे, फिर शय्यादान देकर प्रेतके लिये घटका दान करे॥ ५६॥

राजोवाच

कथं प्रेतघटं कुर्याद् दद्यात् केन विधानतः। ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम्॥ ५७॥

राजाने कहा— (हे प्रेत!) किस विधानसे प्रेतघटका निर्माण करना चाहिये और किस विधानसे उसका दान

* छत्र (छाता), उपानह (जूता), वस्त्र, मुद्रिका (अँगूठी), कमण्डलु, आसन, पञ्चपात्र—ये सात वस्तुएँ पद कही गयी हैं। दण्ड, ताम्रपात्र, आमान्न (कच्चा अन्न), भोजन, घृत और यज्ञोपवीतको मिलाकर (७+६=१३) पदकी सम्पूर्णता होती है। (सारोद्धार १३। ८३-८४)

करना चाहिये। सभी प्राणियोंके ऊपर अनुकम्पा करनेके हेतुसे प्रेतोंको मुक्ति दिलानेवाले प्रेतघट-दानके विषयमें बताइये ॥ ५७ ॥

प्रेत उवाच

साधु पृष्टं महाराज कथयामि निबोध ते । प्रेतत्वं न भवेद्येन दानेन सुदृढेन च ॥ ५८ ॥
दानं प्रेतघटं नाम सर्वाऽशुभविनाशकम् । दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम् ॥ ५९ ॥
सन्तप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः ।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ॥ ६० ॥

प्रेतने कहा—हे महाराज! आपने ठीक पूछा है, जिस सुदृढ दानसे प्रेतत्व नहीं होता है, उसे मैं कहता हूँ, आप ध्यानसे सुनें ॥ ५८ ॥ प्रेतघटका दान, सभी प्रकारके अमङ्गलोंका विनाश करनेवाला, सभी लोकोंमें दुर्लभ और दुर्गतिको नष्ट करनेवाला है ॥ ५९ ॥ ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुसहित लोकपालोंसे युक्त तपाये हुए सोनेका एक घट बनाकर उसे दूध, घी आदिसे पूरा भरकर, भक्तिपूर्वक प्रणाम करके ब्राह्मणको दान करे। (इसके अतिरिक्त) तुम्हें अन्य सैकड़ों दानोंको देनेकी क्या आवश्यकता? ॥ ६० ॥

ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शङ्करः शङ्करोऽव्ययः । प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे लोकपालान् क्रमेण तु ॥ ६१ ॥
सम्पूज्य विधिवद् राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः । ततो दुग्धाऽऽज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम् ॥ ६२ ॥

सर्वदानाधिकं चैतन्महापातकनाशनम्। कर्तव्यं श्रद्धया राजन् प्रेतत्वविनिवृत्तये॥ ६३॥

हे राजन्! उस घटके मध्यमें ब्रह्मा, विष्णु तथा कल्याण करनेवाले अविनाशी शङ्करकी स्थापना करे एवं घटके कण्ठमें पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः लोकपालोंका आवाहन करके उनकी धूप, पुष्प, चन्दन आदिसे विधिवत् पूजा करके दूध और घीके साथ उस हिरण्यमय घटका (ब्राह्मणको) दान करना चाहिये॥ ६१-६२॥ हे राजन्! प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये सभी दानोंमें श्रेष्ठ और महापातकोंका नाश करनेवाले इस दानको श्रद्धापूर्वक करना चाहिये॥ ६३॥

श्रीभगवानुवाच

एवं संजल्पतस्तस्य प्रेतेन सह काश्यप। सेनाऽऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुला॥ ६४॥
ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम्। नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमेयिवान्॥ ६५॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे कश्यपपुत्र गरुड! प्रेतके साथ इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि उसी समय हाथी, घोड़े आदिसे व्याप्त राजाकी सेना पीछेसे वहाँ आ गयी॥ ६४॥ सेनाके आनेके बाद राजाको महामणि देकर उन्हें प्रणाम करके पुनः (अपने उद्धारके लिये और्ध्वदैहिक क्रिया करनेकी) प्रार्थना करके वह प्रेत अदृश्य हो गया॥ ६५॥

तस्माद् वनाद् विनिष्क्रम्य राजापि स्वपुरं ययौ। स्वपुरं च समासाद्य तत्सर्वं प्रेतभाषितम्॥ ६६॥

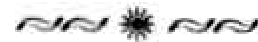
चकार विधिवत् पक्षिन्नौर्ध्वदैहिकजं विधिम्। तस्य पुण्यप्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ॥ ६७॥

हे पक्षिन्! (तदनन्तर) उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला गया और अपने नगरमें पहुँचकर प्रेतके द्वारा बताये हुए वचनोंके अनुसार उसने विधि-विधानसे और्ध्वदैहिक क्रियाका अनुष्ठान किया। उसके पुण्यप्रदानसे मुक्त होकर प्रेत स्वर्गको चला गया॥ ६६-६७॥

श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम्। किं पुनः पुत्रदत्तेन पिता यातीति चाद्भुतम्॥ ६८॥

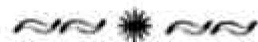
इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः। न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि॥ ६९॥

इति गरुडपुराणे सारोद्धारे बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कारो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥



जब दूसरेके द्वारा दिये हुए श्राद्धसे प्रेतकी सद्गति हो गयी तो फिर पुत्रके द्वारा प्रदत्त श्राद्धसे पिताकी सद्गति हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य॥ ६८॥ इस पुण्यप्रद इतिहासको जो सुनता है और जो सुनाता है वे दोनों पापाचारोंसे युक्त होनेपर भी प्रेतत्वको प्राप्त नहीं होते॥ ६९॥

॥ इस प्रकार गरुडपुराणके अन्तर्गत सारोद्धारमें 'बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कार' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥



आठवाँ अध्याय

आतुरकालिक (मरणकालिक) दान एवं मरणकालमें भगवन्नाम-स्मरणका माहात्म्य, अष्टमहादानोंका फल तथा धर्माचरणकी महिमा

गरुड उवाच

आमुष्मिकीं क्रियां सर्वां वद सुकृतिनां मम। कर्तव्या सा यथा पुत्रैस्तथा च कथय प्रभो॥ १ ॥

गरुडजीने कहा—हे प्रभो! पुण्यात्माओंकी सारी पारलौकिक क्रियाओंके सम्बन्धमें मुझे बताइये। पुत्रोंको जिस प्रकार वह क्रिया करनी चाहिये, उसे उसी प्रकार कहिये॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। धार्मिकार्हं च यत्कृत्यं तत्सर्वं कथयामि ते॥ २ ॥
सुकृती वार्धके दृष्ट्वा शरीरं व्याधिसंयुतम्। प्रतिकूलान् ग्रहांश्चैव प्राणघोषस्य चाश्रुतिम्॥ ३ ॥
तदा स्वमरणं ज्ञात्वा निर्भयः स्यादतन्द्रितः । अज्ञातज्ञातपापानां प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ ४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! मनुष्योंके हितकी दृष्टिसे आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है। धार्मिक मनुष्यके लिये करनेयोग्य जो कृत्य हैं, वह सब मैं तुम्हें कहता हूँ॥ २॥ पुण्यात्मा व्यक्ति वृद्धावस्थाके प्राप्त होनेपर अपने शरीरको व्याधिग्रस्त

तथा ग्रहोंकी प्रतिकूलताको देखकर और प्राणवायुके नाद न सुनायी पड़नेपर अपने मरणका समय जानकर निर्भय हो जाय और आलस्यका परित्याग कर जाने-अनजाने किये गये पापोंके विनाशके लिये प्रायश्चित्तका आचरण करे ॥ ३-४ ॥

यदा स्यादातुरः कालस्तदा स्नानं समारभेत्। पूजनं कारयेद्विष्णोः शालग्रामस्वरूपिणः ॥ ५ ॥
अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च कुंकुमैस्तुलसीदलैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बहुभिर्मोदकादिभिः ॥ ६ ॥
दत्त्वा च दक्षिणां विप्रान्नैवेद्यादेव भोजयेत्। अष्टाक्षरं जपेन्मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च ॥ ७ ॥

जब आतुरकाल उपस्थित हो जाय तो स्नान करके शालग्रामस्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजा कराये ॥ ५ ॥ गन्ध, पुष्प, कुंकुम, तुलसीदल, धूप, दीप तथा बहुत-से मोदक आदि नैवेद्योंको समर्पित करके भगवान्की अर्चा करे ॥ ६ ॥ और विप्रोंको दक्षिणा देकर नैवेद्यका ही भोजन कराये तथा अष्टाक्षर[1] अथवा द्वादशाक्षर[2]-मन्त्रका जप करे ॥ ७ ॥

संस्मरेच्छृणुयाच्चैव विष्णोर्नाम शिवस्य च। हरेर्नाम हरेत् पापं नृणां श्रवणगोचरम् ॥ ८ ॥
रोगिणोऽन्तिकमासाद्य शोचनीयं न बान्धवैः। स्मरणीयं पवित्रं मे नामधेयं मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥

भगवान् विष्णु और शिवके नामका स्मरण करे और सुने, भगवान्का नाम कानोंसे सुनाई पड़नेपर वह मनुष्यके पापको नष्ट करता है ॥ ८ ॥ रोगीके समीप आकर बान्धवोंको शोक नहीं करना चाहिये। प्रत्युत मेरे पवित्र नामका

१. ॐ नमो नारायणाय। २. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

बार-बार स्मरण-कीर्तन करना चाहिये ॥ ९ ॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च ॥ १० ॥
एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः। समीपे रोगिणो ब्रूयुर्बान्धवास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ११ ॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। तस्य भस्मीभवन्त्याशु महापातककोटयः ॥ १२ ॥

विद्वान् व्यक्तिको मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि[1]—इन दस नामोंका सदा स्मरण-कीर्तन करना चाहिये। जो व्यक्ति रोगीके समीप उपर्युक्त नामोंका कीर्तन करते हैं, वे ही उसके सच्चे बान्धव कहे गये हैं ॥ १०-११ ॥ 'कृष्ण' यह मङ्गलमय नाम जिसकी वाणीसे उच्चरित होता है, उसके करोड़ों महापातक तत्काल भस्म हो जाते हैं ॥ १२ ॥

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्। अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ १३ ॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥ १४ ॥
हरेर्नाम्नि च या शक्तिः पापनिर्हरणे द्विज। तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकी जनः ॥ १५ ॥

मरणासन्न अवस्थामें अपने पुत्रके बहानेसे 'नारायण' नाम लेकर अजामिल भी भगवद्धामको प्राप्त हो गया तो फिर जो श्रद्धापूर्वक भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेवाले हैं, उनके विषयमें क्या कहना! ॥ १३ ॥ दूषित

१. ये दस भगवान्‌के प्रमुख अवतार कहे गये हैं।

चित्तवृत्तिवाले व्यक्तिके द्वारा भी स्मरण किये जानेपर भगवान् उसके समस्त पापोंको नष्ट कर देते हैं, जैसे अनिच्छापूर्वक भी स्पर्श करनेपर अग्नि जलाता ही है॥ १४॥ हे द्विज! (वासनाके सहित) पापोंका समूल विनाश करनेकी जितनी शक्ति भगवान्के नाममें है, पातकी मनुष्य उतना पाप करनेमें समर्थ ही नहीं है॥ १५॥

किङ्करेभ्यो यमः प्राह नयध्वं नास्तिकं जनम्। नैवानयत भो दूता हरिनामस्मरं नरम्॥ १६॥

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥ १७॥
कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे।
भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान्॥ १८॥
तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्त्रम्।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टादगृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान्॥ १९॥

यमदेव अपने किङ्करोंसे कहते हैं—हे दूतो! हमारे पास नास्तिकजनोंको ले आया करो। भगवान्के नामका स्मरण करनेवाले मनुष्योंको मेरे पास मत लाया करो॥ १६॥ (क्योंकि) मैं (स्वयं) अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ, जानकीनायक रामचन्द्रका भजन करता हूँ॥ १७॥ हे दूतो! जो व्यक्ति हे कमलनयन, हे वासुदेव, हे विष्णु, हे धरणिधर, हे अच्युत, हे शङ्खचक्रपाणि! आप मेरे शरणदाता हों—ऐसा

कहते हैं, उन निष्पाप व्यक्तियोंको तुम दूरसे ही छोड़ देना॥ १८॥ (हे दूतो!) जो निष्किञ्चन और रसज्ञ परमहंसोंके द्वारा निरन्तर आस्वादित भगवान् मुकुन्दके पादारविन्द-मकरन्द-रससे विमुख हैं (अर्थात् भगवद्भक्तिसे विमुख हैं) और नरकके मूल गृहस्थीके प्रपञ्चमें तृष्णासे बद्ध हैं, ऐसे असत्पुरुषोंको मेरे पास लाया करो॥ १९॥

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥ २०॥

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्। महतामपि पक्षीन्द्र विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम्॥ २१॥

जिनकी जिह्वा भगवान्‌के गुण और नामका कीर्तन नहीं करती, चित्त भगवान्‌के चरणारविन्दका स्मरण नहीं करता, सिर एक बार भी भगवान्‌को प्रणाम नहीं करता, ऐसे विष्णुके (आराधना-उपासना आदि) कृत्योंसे रहित असत्पुरुषोंको (मेरे पास) ले आओ॥ २०॥ इसलिये हे पक्षीन्द्र! जगत्‌में मङ्गल-स्वरूप भगवान् विष्णुका कीर्तन ही एकमात्र महान् पापोंके आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्तिका प्रायश्चित्त है—ऐसा जानो॥ २१॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्। न निष्पुनन्ति दुर्बुद्धिं सुराकुम्भमिवापगाः॥ २२॥
कृष्णनाम्ना न नरकं पश्यन्ति गतकिल्बिषाः। यमं च तद्भटांश्चैव स्वप्नेऽपि न कदाचन॥ २३॥

नारायणसे पराङ्मुख रहनेवाले व्यक्तियोंके द्वारा किये गये प्रायश्चित्ताचरण भी दुर्बुद्धि प्राणीको उसी